बदले नज़र नज़ारा बदले

शरद्कुमार साधक



जय जगत सेवा संस्थान
बी. ३८/१३-३०, नवोदित नगर एक्स्टेंशन
वाराणसी - २२१०१०

पुस्तक

व्यतीत अतीत के प्रति सहज अनुराग, विकासजन्य विषमता के प्रति असीम असंतोष और भविष्य की संभावनाओं के प्रति अपार आस्था प्रतिबिम्बित करने वाली इस पुस्तक में परशोषण का नहीं, परस्पर पोषण का शिक्षण है, सरकारी सत्ता का नहीं, सहकार के सामर्थ्य का समर्थन है। समस्याओं का प्रस्तुतिकरण और निदान तो है ही, समाधान की नूतन दिशाएँ और प्रयोग के लिए विशाल आकाश का विस्तार भी है।

हर समस्या को जागतिक संदर्भ में देखने/समझने और सर्वहितकारी समाधान सुझाने के संकेत अलग-अलग लेखों में हैं, जिन्हें जानने-पहचानने और मानने से सपनों की स्वस्थ भूमि पर यथार्थ सत्य के भवन का निर्माण संभव है। यह ऐसा दस्तावेज है, जो भविष्य के प्रति संशयशील मानव को सम्यक् दृष्टि एवं सम्यक् सृष्टि का बोध कराता है, सुझाता भी है कि मुझे क्या करना है, आपको क्या करना है, हम सबको क्या करना है। स्वयं पहल कर किस तरह सामूहिक प्रयास से सृष्टि-संकट हरना है।

अन्धकार को क्यों धिक्कारें,
आत्म-दीप बन जायें सारे।

आचार्य वी. के. राय


महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथी.........
पु०सं० 2100
भारती पुस्तकालय





बदले नज़र : नज़ारा बदले



आचार्य शरदकुमार साधक



जय जगत् सेवा संस्थान
बी. 38/13-30, नवोदित नगर एक्सटेंशन
वाराणसी - 221 010

प्रकाशक :
जय जगत सेवा संस्थान
बी.३८/१३-३०, नवोदितनगर एक्स्टेंशन
वाराणसी - २२१ ०१०

A Textbook for Social workers in the view of National thinker Shri Govindacharya.

सहयोगी :
आचार्यकुल एवं
सुरभि शोध संस्थान
बी.२७/७५ डी. रवीन्द्रपुरी
वाराणसी - २२१ ००५

BADALE NAJAR : NAJARA BADALE
Acharya S.K. Sadhak

संस्करण : जनवरी २००८

Publisher :
Jai Jagat Seva Sansthan
B.38/13-30, Navodit Nagar Ext.
Varanasi - 221 010

Price : 150.00

मूल्य : एक सौ पचास रुपये

मुद्रण :
काशी ग्राफिक्स
हंकारटोला, वाराणसी

संपादक
डॉ० सुमन जैन



श्रद्धा-स्मरण

डा. मोहनलाल तिवारी
प्रो. राधेश्यामधर द्विवेदी
प्रो. गुरुशरण
डा. सुदर्शन कुमारी
श्री महालचंद बोथरा
श्री देवेन्द्र कर्णावट
डॉ. वी. के. राय
श्री के. वैद्यनाथन्
स्वामी मुक्तानन्द
मानव मुनि जी
को
जो
जय जगत की चर्चा-अर्चा में सहभागी रहे
और जिनकी कृति से
निम्न पंक्तियों की सार्थकता सिद्ध हुई :

उनका जीवन धन्य जिन्होंने दुःख पराये बांटे हैं,
औरों को दे फूल स्वयं के लिए चुन लिये कांटे हैं,
देवतुल्य वे उन्हें मनुज कहकर मत बदनाम करो-
ओ धरती के रहने वालों आओ उन्हें प्रणाम करो।

-शरदकुमार साधक

यह तुम्हारी सभ्यता

यह तुम्हारी सभ्यता का काफिला,
आजमाने चाँद की दूरी चला,
किन्तु धरती पर न तय हो पा रहा,
आदमी से आदमी का फासला
क्या करें वह चन्द्रमा का देश हम,
जो अगम लगता हमारे पांव को
क्या करें आकाश की वह राह हम,
जो न जाती हो हमारे गाँव को।

—अज्ञात



प्रकाशकीय

जय जगत सेवा संस्थान की स्थापना ३० जनवरी १९८९ को हुई। विश्वशांति को केन्द्र में रखकर ऐसी प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ की गयीं, जिनसे सामाजिक न्याय तथा समुदाय के अन्तर्गत मानव की प्रतिष्ठा बढ़े और मानवीय मूल्यों का संरक्षण तो हो ही, प्रकृति के प्रति निरपेक्ष आदरभाव भी पल्लवित हो। कनाडा, जर्मनी, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, इंग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया, संयुक्त अरब अमीरात के सदस्यों ने विश्वजनीन संदर्भ में संस्थान के उद्देश्यों के अनुरूप कार्य किया, जिसका ब्यौरा 'जय जगत सेवा संस्थान' 'जय जगत मैत्री अभियान' 'जय जगत की चर्चा-अर्चा' पुस्तकों में प्रकाशित है। २२ फरवरी १९८९ को संस्थान के संस्थापक अध्यक्ष आचार्य शरदकुमार साधक ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के महामंत्री को लिखा कि संत विनोबा भावे के सुझावानुसार आप विश्वशांति सेना खड़ी करें तो एक लाख शांति सैनिक खड़े करने की जिम्मेवारी अहिंसकं समाज रचना में संलग्न हमलोग ले सकते हैं। १८ मई १९९९ को अंतर्राष्ट्रीय संयोजक डॉ. एस. एन. राय ने कनाडा में संगोष्ठी कर कोसावा नर संहार रोकने के लिए कारगर कदम उठाने की भी माँग की।

१० जुलाई १९०५ को संस्थान रजिस्टर्ड हुआ। विदेशों में रहने वाले सदस्यों की बैठकों में उपस्थित न रह पाने की विवशता तथा मंत्री डॉ० मोहनलाल तिवारी आदि वरिष्ठ सहयोगियों के आकस्मिक निधन के कारण ५ अप्रैल २००५ को पदाधिकारियों का पुनर्चयन हुआ। तय हुआ कि आचार्यकुल, सुरभि शोध संस्थान, भारत विकास संगम, अहिंसा समवाय, हिन्द स्वराज्य विद्यापीठ जैसी समानधर्मी संस्थाओं को साथ लिया जाय और जीव, जीविका, जैव विविधता रक्षणार्थ शिक्षा सेवा प्रकल्प खड़े किये जायँ। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कार्यशालाएँ आयोजित हुईं, जिनमें प्रतिभागियों ने देखा कि 'एक्ट लोकली थिंक ग्लोबली' की भूमिका प्रशस्त करते हुए कैसे कार्य योजना पूरी की जा सकती है।

जय जगत सेवा संस्थान के परिपत्र, वक्तव्य, आकाशवाणी वार्ता, सर्वोदय समाचार सेवा के सौजन्य से प्रसारित लेख देशभर की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहने से अच्छा प्रतिसाद मिला। श्री साधक जी के दिशा व दशा बदलने वाले बहु-चर्चित लेख जो सेमिनारों, प्रशिक्षण सत्रों में प्रस्तुत हुए, वे 'बदले नजर : नजारा बदले' पुस्तक में संकलित हैं। अलग-अलग समय पर अलग-अलग पत्रिकाओं में प्रकाशित होने से कहीं-कहीं पुनरुक्ति हुई है- किन्तु विषयवस्तु के अनुरूप होने से संकलन/संपादनकर्तृ डॉ. सुमन जैन ने लेख यथावत रखे हैं। इन्हें पढ़कर पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि आज की समस्याएँ एक देशीय नहीं रह गयी हैं। जीवन का हर पक्ष विश्व समस्याओं एवं परिवेशों से प्रभावित है। इसलिए विचार में व्यापकता, व्यवहार में संवेदनशीलता, सम्बन्धों में परस्पर परिपूरकता तथा संस्कृति में सृजनशीलता का आयाम भी विश्वजनीन होना चाहिये।

वाराणसी
१ जनवरी २००८

डॉ. वी.डी. उपाध्याय
मंत्री

आशीर्वचन

सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए पाठ्यपुस्तक...

१९७४ के छात्र आंदोलन में हिस्सा लेते समय संघ एवं गांधी विचारों से साथ-साथ संपर्क आया। ध्यान में आया कि समाज रचना के बारे में बहुत ज्यादा साम्य है, स्वदेशी एवं विकेन्द्रीकरण के बारे में दोनों धाराओं की सोच लगभग समान है।

श्रेष्ठ समाजसेवी स्व. धीरेन्द्र मजूमदार के साहित्य से उस समय परिचय हुआ। तब से गाँवों के बारे में सोचने, काम करने का इच्छुक कोई भी नौजवान मिलता था, तो मैं उसे धीरेन्द्र मजूमदार जी द्वारा लिखित पुस्तकें 'समग्र ग्राम सेवा की ओर' एवं 'क्रान्ति-प्रयोग और चिन्तन' पढ़ने को कहता था, जिससे उसकी क्षमता बढ़ जाय, सोच एवं दिशा तय करने में सहूलियत मिले।

आदरणीय शरदकुमार साधक जी का कहना रहा है कि हर युग का तकाजा अलग होता है तो समाधान के लिये संरचना, तरीका, औजार, योद्धा उसके अनुसार होना जरूरी है। उनका कहना रहा कि तिलक के लोग गांधी के काम नहीं आये, गांधी के लोग विनोबा के काम नहीं आये, विनोबा के लोग आज शायद उतने काम न आयें, हाँ, अगले दौर के लिये पिछले दौर के अनुभव काम आयेंगे।

इस पुस्तक में बहुत अच्छे प्रकार से देश की परंपरा से उद्भूत वैदिक, अवैदिक दर्शन का समन्वय बखूबी किया गया है, वैसे ही बाजारवाद से उद्भूत आज की समस्या का चित्रण ही नहीं समाधान का रास्ता भी दिखाया गया है। ऐसा रास्ता हो जो भारत की तासीर, तेवर, जरूरत और दुनिया में भारत के योगदानानुकूल हो। पुस्तक में जमीन, जल, जंगल, जानवर और जन का परस्पर संपोषण ही समुचित विकास का रास्ता है इसे बताने का सफल प्रयास किया गया है। समाज के लिये कुछ करने की चाह रखने वालों के लिये पाठ्य सामग्री सही तरह से संयोजित की गयी है।

सामाजिक कार्यकर्ताओं को समग्र दृष्टि प्राप्त होने के साथ उपयुक्त कार्य करने की समझ भी बढ़ेगी।

सामाजिक कार्यकर्ता के लिए मैं इसे पाठ्य पुस्तक के नाते देखता हूँ। इस पुस्तक में कार्यकर्ताओं के लिए गांव, देश, दुनिया की जरूरी जानकारियों के साथ दिशा निर्देश भी पाता हूँ कि वे सरकार मुक्त, बाज़ार मुक्त, विकेन्द्रित, स्वायत्त, संपन्न, एकात्म, समृद्ध एवं समर्थ समाज के लिये नजरिया क्या रखें, क्या-क्या काम करें, काम करते समय विश्व दृष्टि, जीवन दृष्टि, विधि निषेध क्या हो, इसे भी जीवंत एवं समग्र ढंग से उकेरा गया है।

'समग्र ग्राम सेवा की ओर', 'क्रान्ति-प्रयोग और चिंतन' से आगे आज की जरूरतों को पूरा करने के लिये यह पाठ्य-पुस्तक बहुत लाभपद है।

राम, राम का नाम, राम का काम, तीनों बातों को बड़े सुन्दर ढंग से गूंथा गया है।

गांधी जी के बारे में साधक जी द्वारा लिखी 'नये युग का सूत्रपात' पुस्तक के बाद दिशा, गतिविधियों और अपने को बेहतर उपकरण बनाने के बारे में यह अत्यंत सराहनीय प्रयास है।

भारत विकास संगम,
वाराणसी
दिनांक : २४.१२.२००७

गोविन्दाचार्य

सम्पादक की ओर से

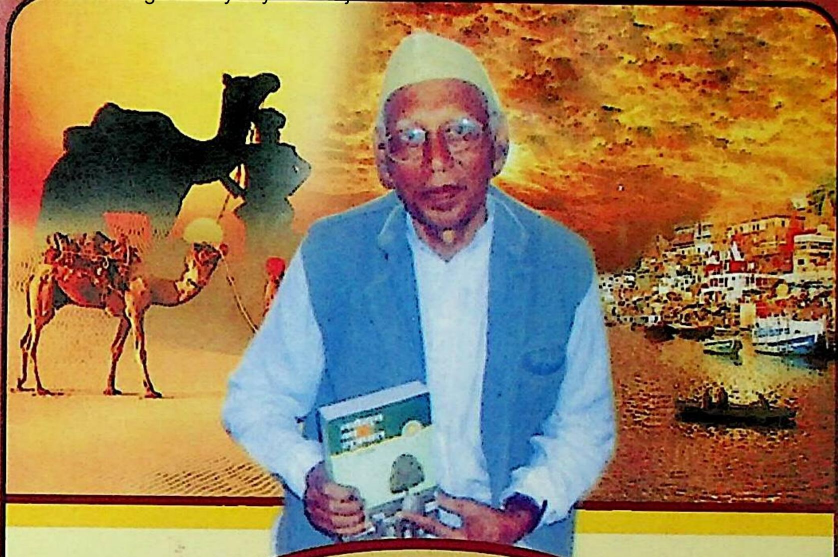
जय जगत सेवा संस्थान एवं आचार्यकुल के कार्यालय मंत्री का कार्य करते समय अध्यक्ष के लेख आदि प्रसारित करने का अवसर मिला। गोलोकवासी आचार्य वी.के. राय के सुझावानुसार उनका संकलन करती रही। उन्होंने संकलन की उपयोगिता के बारे में जो विचार व्यक्त किये, वे रैपर पर प्रकाशित हैं। संकलित सामग्री का अध्ययन, चिन्तन, मनन और कार्यशालाओं में अनुशीलन करते समय विदेशी समाजसेविका एडिय कैवल का कथन याद आया : "देश भक्ति पर्याप्त नहीं है। मुझे किसी के प्रति नफरत या कटुता नहीं रखनी चाहिये।" उससे आगे का कार्यानुभव संकलन में होने से मुझे लगा कि बिना नफरत और कटुता के हम आर्थिक दृष्टि से गाँव को अपना विश्व एवं सांस्कृतिक दृष्टि से विश्व को अपना गाँव मान कर कार्यरत हैं, जिससे जय जगत् की अवधारणा आकार ले रही है। इसके लिए प्रत्येक गाँव, नगर को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी, सामाजिक दृष्टि से संवेदनशील, राष्ट्रीय दृष्टि से रचनाधर्मी तथा जागतिक दृष्टि से सर्वहिताकांक्षी होना चाहिए। जहाँ चाह तहाँ राह बनाने में लेखक की अनुभूति से सहानुभूति एवं सहानुभूति से अभिव्यक्ति पुस्तकाकार हो गयी है। यह देशभक्ति का नवोन्मेष है।

सुरभि शोध संस्थान, भारत विकास संगम और समान धर्मी संगठनों ने जल, जंगल, जमीन, जन, जानवरों का दोहन रोककर प्राकृतिक संतुलन बनाये रखने के लिये राष्ट्रीय अधिवेशन आयोजित किया है। देश भर से आये प्रतिनिधियों के लिये यह पुस्तक पाथेय बनी तो मुझे प्रसन्नता होगी। संकलन, संपादन के निमित्त अभिभावकों की सेवा का लाभ मिला और आशीर्वाद भी, अतः मैं उनके प्रति श्रद्धावनत हूँ।

प्रसिद्ध विचारक, चिन्तक एवं भारत विकास संगम के प्रेरक आदरणीय गोविन्दाचार्य के आशीर्वाद से जय जगत सेवा संस्थान को ऊर्जा मिली है। उनके प्रति विशेष नमन।

३१ दिसम्बर ०७ — डा. सुमन जैन

अनुक्रम

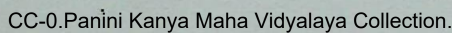


लेखक परिचय

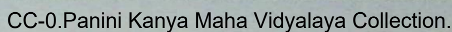
जय जगत् सेवा संस्थान के अध्यक्ष आचार्य शरदकुमार साधक गाँधीनिष्ठ विचारक, लेखक, सम्पादक और काशी के वरिष्ठ नागरिक हैं। परम्परा की दृष्टि से हिन्दू, संस्कार की दृष्टि से जैन, समाज की दृष्टि से राजस्थानी, सेवा की दृष्टि से भारतीय एवं विचार की दृष्टि से जय जगत् का होते हुए आपने अपनी प्रवृत्तियों में स्वार्थ-प्रेरणा, समाज प्रेरणा, युग-प्रेरणा और भगवत् प्रेरणा की समन्विति साधी है।

साधकजी मानते हैं कि सत्यग्राही को निष्पक्ष रहना चाहिए। पक्ष रहेगा तो सत्य नहीं रहेगा। सत्य रहेगा तो वैज्ञानिक वृत्ति हर प्रवृत्ति को परमार्थ परक बना देगी। तब मनुष्य इच्छाओं के अधीन नहीं रहेगा, इच्छाएँ उसके अधीन हो जायेंगी। उसे वातावरण नहीं बनायेगा, वही वातावरण बनायेगा। जल, जंगल, जमीन, जन और जानवर को निरापद रखना उनका धर्म हो जायेगा। पर्यावरण संतुलित रखे बिना जीव, जीविका, जैव-विविधता का रक्षण संभव नहीं है।

लेखन



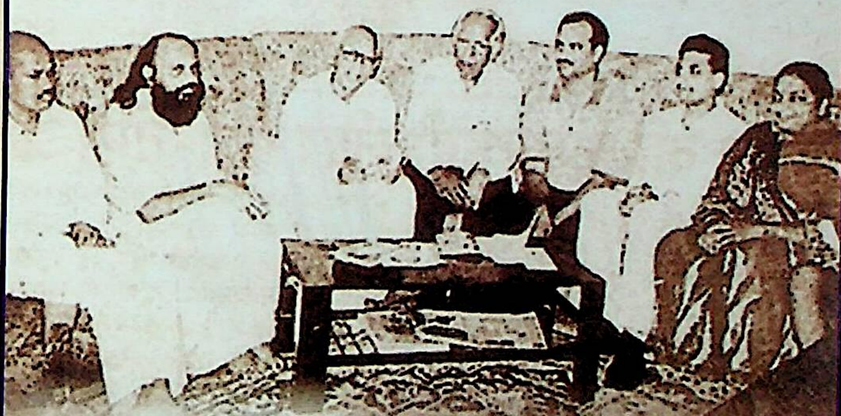
लेखन



संपादन


कुष्ठरोग और इलाज
शिक्षा का शुक्ल पक्ष
लोक क्रान्ति पाथेय
शेष अशेष
हिन्दी सेवा के चालीस वर्ष
वनवासी सेवा आश्रम के चालीस वर्ष
जीवन के तीन मोड़
दादा की बोध कथायें
नयेयुग का सूत्रपात
निशि-दिन सेव तुम्हारी
जय जगत मैत्री अभियान

जय जगत सेवा संस्थान



जय जगत मैत्री यात्रा








गंगा सेवा भारत सेवा

संकल्प भाइ चारा और अमन का

आचार्यकुल

कार्यालय की रपट

अमरउजाला

कुपोषण का तां

वाराणसी

सौ बुनकर परिवारों को रोजगार देने की शुरुआत

हिन्दुस्तान

'भारत में लिया जनम, गाएंगे वंदेमातरम्'

तिरंगे संग पर्दानशीनों ने गाया 'वंदेमातरम्

प्रतिसाद

हिंसा की चुनौती स्वीकार करने वाला सांस्कृतिक अभियान

(उत्तर प्रदेश शासन का विश्वविद्यालय)

द्वारा

से

अलंकृत किया जाता है।

प्रो० दिलीप सिंह
कुलपति
द भा हिन्दी प्रचार सभा
चेन्नई

प्रो० सुरेन्द्र सिंह कुशवाहा
कुलपति
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी

International Institute for Holistic Research and Voluntary Action (India-Germany)

We express our appreciation for the **PERFORMANCE** of

Shri ACHARYA SHARADKUMAR SADHAK

Irmel Marla
Dr. Kamal Taori, Vidyarthi

Indo - German Consultancy

ब्रह्म सत्यम्
जगत् स्फूर्तिः
जीवनं सत्यशोधनम्

(डॉ. सुमन जैन)

जागतिक परिस्थिति

व्यक्ति, समाज और प्राकृतिक संसाधन लोकशक्ति के मूल आधार हैं। व्यक्ति को सामाजिक बनाना तथा प्रकृति को संतुलित रखने की नीति निर्देशित करना धर्म का कार्य है। नीति सम्पन्न कार्यों में व्यवधान डालने वालों को नियंत्रित करना और लोक कल्याणकारी प्रवृत्तियों को प्रश्रय देना राज्य का कार्य है। प्राकृतिक संसाधनों का सम्यक् उपयोग करते हुए सामुदायिक जीवन, जीविका, जैव विविधता रक्षण की समझ पैदा करना शिक्षा का कार्य है। धर्म, राज्य और शिक्षा से संबद्ध लोगों की कर्तव्य परायणता से सृष्टि की एकता, जीवन की सम्पन्नता एवं लोकतंत्र की रक्षा होती है और कर्तव्य विमुखता से जीवन का हर क्षेत्र समस्याग्रस्त हो जाता है, जिससे लोक-संकट गहराता है।

लोकतांत्रिक युग में तंत्र 'लोक' को शासित व शोषित कर रहा है। उसने सत्ता और संपत्ति वालों के हित में ऐसी नीति बना रखी है, जिससे विश्व की अधिकांश साधन सम्पत्ति ३६२ व्यक्ति, परिवार या संगठनों के हाथों में है। मात्र ३० प्रतिशत जन मनमाना उपभोग करते हैं और ७० प्रतिशत जन गरीबी में जीने को विवश हैं। भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश, भूटान, नेपाल, मालदीव, अफगानिस्तान, म्यांमार के ८ करोड़ ७० लाख बालक पौष्टिक आहार एवं ७७ करोड़ लोग पेयजल के लिए तरसते हैं। १२ करोड़ ६० लाख बच्चे प्राथमिक विद्यालय और ६० करोड़ लोग स्वास्थ्य केन्द्र से वंचित हैं। यूनेस्को की रिपोर्ट के मुताबिक दुनिया के १६७ देशों में से मात्र ४७ देशों में ही प्राथमिक शिक्षा सुलभ है। ऐसी स्थिति में वैश्वीकरण बनाम स्वावलम्बन एवं स्थायी विकास के बारे में बुनियादी ढंग से सोचे बिना अभाव, अन्याय, अज्ञान व आतंक से कैसे मुक्ति मिल सकती है?

विकसित देश का नागरिक अपने ७० वर्ष के जीवनकाल में २ करोड़ गैलन पानी, २१ हजार गैलन ग्लिसरॉल (पेट्रोल), १० हजार पौंड दूध व मांस का भोग करता है। विकास के हिमायती वही स्तर पाने के लिए धरती के संसाधनों का भयंकर दोहन करते हैं, जिससे विभिन्न देशों की लगभग १ करोड़ ९० लाख हेक्टेयर भूमि की उर्वराशक्ति घटी, ५० हजार किस्म की फसलें तथा उत्पादन में सहायता करने वाली ४ हजार किस्म की मवेशी नस्लें नष्ट हुईं। पर्यावरणविद् मानते हैं कि उपभोक्तावादी संस्कृति ने संसार को मात्र लाभप्रद बाजार और नागरिक को उपभोक्ता बना दिया है। जनसाधारण के लिए ईमान की रोटी व इज्जत की जिन्दगी दुःस्वप्न होती जा रही है। क्योंकि खनिज तेल, कोयला, जीवाश्म ईंधनों के

जलने एवं कटिबंधीय वर्षा वनों के विनाश के कारण हर वर्ष बीस हजार प्रजातियाँ लुप्त हो रही हैं। अकुशल, अर्धकुशल नागरिकों की रोजी-रोटी, अविकसित व विकासशील देशों की राष्ट्रीय अस्मिता तथा आर्थिक संप्रभुता भी पूंजी, प्रौद्योगिकी व आधुनिक तकनीक की बंधक है। विकास की अंधी दौड़ में शामिल इंडोनेशिया, मलेशिया, थाइलैण्ड, दक्षिण कोरिया आदि देश विकसित देशों के उपनिवेश बन गये हैं। एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के ऋणग्रस्तदेशों के नागरिक जितना आयात करते हैं, उतना यदि अब निर्यात करने योग्य अपना उत्पाद नहीं बढ़ायेंगे तो उन्हें विश्वबैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के इशारों पर ही नाचते रहना होगा।

जून १९९२ में सम्पन्न धरती सम्मेलन में सारे संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में सुझाया गया कि विकास ऐसा न हो कि आने वाले दिनों में शुद्ध हवा, शुद्ध जल, उर्वर भूमि और प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता दुर्लभ हो जाय। विश्व के वैज्ञानिकों ने संयुक्त अपील की है कि जब तक जनसंख्या सीमित थी, हम सुरक्षित रहे। लेकिन अब बढ़ती जनसंख्या के साथ बढ़ायी जा रही कृत्रिम आवश्यकता की पूर्ति के लिए हो रही होड़ को रोकें, वरना विश्व के नागरिकों को इस समय जो संसाधन प्राप्त हैं, वे भी अगले दशक में घटकर आधे रह जायेंगे। इसलिए वाराणसी में भूमि रक्षण, जल प्रबंधन, वृक्षारोपण, उपलब्ध संसाधनों का उपयोग, नस्ल सुधार, स्थानीय प्रतिभा, कला-कौशल का उपयोग और कूड़े से कंचन बनाने के अनेक प्रकल्प प्रारंभ किये, जिससे ऊसर सुधरा, बंजर भूमि हरी-भरी हुई। अनाज, फल-फूल मिले। चहचहाते पक्षी, नर्तन करते मयूर, कुलांचे भरते बाछे-बाछी और रंभाती गायों की बहुलता ने उजाड़ वन को मधुबन बनाया। औषधोपयोगी उद्यान, गृह-नक्षत्र वाटिका का विकास हुआ है। कृत्रिम ऊर्जा की जगह वैकल्पिक ऊर्जा काम में आने लगी है। मधुमक्खी पालन, गोपालन से लोगों को रोजी-रोटी मिल रही है। गोरस भंडार खुले हैं। सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, पापड़ उद्योग, मसाला उद्योग, अचार उद्योग आदि आमदनी बढ़ाने में सहायक हैं। मानव ऊर्जा व पशु ऊर्जा का रचनात्मक उपयोग हो रहा है। कम पूँजी में बुनियादी जरूरतें पूरी करने वाला स्थानीय नियोजन उत्पादन, उपयोग, विपणन में तालमेल रखता है। सैकड़ों परिवार पूर्णकालिक एवं हजारों परिवार अंशकालिक काम पा रहे हैं। अनुपयोगी को उपयोगी व अकुशल को कुशल बनाने और इक्कीसवीं सदी के समक्ष उपस्थित चुनौतियों को स्वीकार करने की इससे वैज्ञानिक विधा सामने आयी है। ग्राम पंचायत, स्वयं सेवी संस्थाएँ और सरकार की सहभागिता रहे तो ऐसे क्षेत्रीय स्वावलंबन साधते हुए सामाजिक व पर्यावरणीय क्षति को रोकने का अभियान चलाया जा सकता है। इसके लिए जीवन विज्ञान संगत व्यावहारिक चिन्तन अपेक्षित है। चिन्तन सम्यक् होने से ही चरित्र सम्यक् होता है।

भारतीय मनीषी विश्व चिन्तन करते रहे, लेकिन विश्व को सामने रखकर चिन्तन करने का श्रीगणेश गांधी युग में हुआ है। पहले योद्धा शस्त्र से लड़ते थे। क्रोध, घृणा, द्वेषवश वे शत्रु को ही मारते थे, लेकिन अब शान्त चित्त से निश्चित लक्ष्य और निर्धारित स्थान पर प्रक्षेपास्त्र गिराने वाले शत्रु के साथ मित्र, स्त्री, पुरुष, बीमार, बालक, निरपराध नागरिक आदि को तो मारते ही हैं, जंगल जलाते हैं, नदी-जल प्रदूषित करते हैं और पशु-पक्षी को भी नहीं बक्शते। इसलिए आवश्यकता है जीवन शैली बदलने की। बदलने हेतु 'नॉन वायलेंट रेजिस्टेंस' अहिंसक प्रतिकार की जगह 'नॉन वायलेंट एसिस्टेंस इन टर्म्स ऑफ राइट थिंकिंग एण्ड वर्किंग' आचार-विचार-व्यापार-व्यवहार में अहिंसक सहकार करें, ताकि आर्थिक दृष्टि से गाँव हमारा विश्व और सांस्कृतिक दृष्टि से विश्व हमारा गाँव हो रहा है तो हम एक दूसरे का पोषण व रक्षण करना सीखें। गो आधारित समग्र सेवा प्रकल्प ऐसा पदार्थ पाठ है, जिससे जीवन, जीविका, जैव विविधता रक्षण पोषण की दृष्टि मिलती है। धर्म, राज्य, शिक्षा इस दृष्टि के अनुरूप सृष्टि करने में सहायक होकर ही विज्ञान युग में प्रासंगिक रहेंगे। स्थानीय होते हुए विश्व को प्रभावित करने वाली हमारी प्रवृत्तियाँ व्यक्ति व व्यवस्था बदलने वाली हैं, जिनसे परिस्थिति की चुनौती स्वीकार की जा सकती है।



रक्षण-पोषण-संवर्धनार्थ अपेक्षित सम्यक् सेवा

सेवावृत्त

आजकल हर एक आदमी सेवा करने को आतुर है। कोई माता-पिता की सेवा करता है, कोई गुरु की। कोई बीमारों की सेवा करता है तो कोई आपदाग्रस्त लोगों की। किसी को गोसेवा की लगन है, कोई गंगा सेवा में मगन है। किसी को कार सेवा में रस है, किसी के लिए सरकारी सेवा बस है। लोग जिसे वोट देकर सम्मति एवं टैक्स देकर सम्पत्ति सौंपते हैं, उस सरकार के भी लाखों कर्मचारी लोकसेवा में नियोजित हैं। भारत में जितने सेवक प्राचीनकाल या अंग्रेजों के शासनकाल में थे, उनसे कई गुना अधिक वर्तमान लोकतान्त्रिक काल में हैं। उनका काम नागरिक सेवा करना है। इसी तरह लोकसेवा करके राजनीतिक पार्टियां सत्ता के दरवाजे दस्तक देती हैं। उनकी सेवा का साधन सत्ता है। सत्ताधारी व सत्ताकांक्षी पक्षाधारित सेवा प्रकल्प खड़े करते हैं। जो क्षेत्र अछूता रहता है, उसमें स्वयंसेवी संस्थाएं पक्षमुक्त सेवा देने की तत्परता दिखाती हैं और जनता को लाभान्वित करती हैं। वैसे देखा जाय तो किसान, मजदूर, कारीगर, व्यापारी, शिक्षक, चिकित्सक, वैज्ञानिक आदि जनता-जनार्दन के सेवक ही हैं। लेकिन अधिक पाने की इच्छा और त्यागने की अनिच्छा के कारण प्रभुता की हकदार सेवा लघुता की शिकार हो गयी है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की चर्चा करने वाले स्वकुटुम्ब की अर्चा में संलग्न हैं। यही देखकर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने लोकसेवकों को नसीहत दी थी कि हम अपने कुटुम्बों के लिए मरना जानते हैं, किन्तु अब कदम आगे बढ़ायें। अपनी सेवा का वृत्त इतना फैलायें कि सारा गांव उसमें समा जाय। फिर जिला, प्रांत, देश को छूते हुए सम्पूर्ण जगत् को ढंक लें। हम भारत के विनम्र सेवक हैं।

भारत की सेवा द्वारा सम्पूर्ण मानवता की सेवा की जा सकती है - यह सिद्धान्त स्वीकार करने से ही विश्व की स्थिति सुधर सकती है और हमारी इस पृथ्वी पर स्थित राष्ट्रों के पारस्परिक राग-द्वेष समाप्त हो सकते हैं। इसके लिए दिमाग ऊँचा और दिल व्यापक होना चाहिए।

वृत्ति-विचार

जनसेवा, समाजसेवा, राष्ट्रसेवा जैसे शब्दों का प्रचलन बढ़ा है, लेकिन वास्तव में होती है सृष्टि सेवा और स्रष्टा की सेवा। माँ अपने बच्चे का बहता नाक साफ करती है, तब वह यह नहीं मानती है कि वह सिर्फ नाक सफाई कर रही है। वह मानती है कि नाक बच्चे का अस्वस्थ भाग है, उसकी सफाई किये बिना बच्चे की सेवा नहीं हो सकती। आचार्य विनोबा भावे ने इस विषय को विस्तार से समझाते हुए सिखाया कि सृष्टि के अस्वस्थ भाग

की सेवा करने से पूरी सृष्टि की सेवा होती है। सेवा की इच्छा करने वाले लोग हमेशा समाज में रहते हैं। समाज की भक्ति हो सकती है, किन्तु प्रत्यक्ष सेवा अपनी क्षमता के अनुसार कुछ व्यक्तियों की ही की जा सकती है। ऐसा करते समय वृत्ति सर्वभूतानुकूल रखने से सेवा सार्थक होती है। सेवा भले ही एक व्यक्ति या एक क्षेत्र की करें, लेकिन हैं हम विश्व के और विश्वेश्वर के ही सेवक। आत्म परीक्षण से मन का, मौन से वाणी का एवं कर्मयोग से शरीर का दोष मिटाते रहने से सेवा–शुद्धि होती रहती है। जिनकी सेवा करनी है, उनकी समस्याएँ सामने रखकर सेवा क्षेत्र निर्धारित करना चाहिये। जनसेवकों को सम्बोधित पद्य है :

पैदा कर जिस देश जाति ने तुमको पाला पोसा,
किये हुए हैं निज पर हित का तुमसे बड़ा भरोसा।
उससे होना उऋण प्रथम है सत्कर्तव्य तुम्हारा,
फिर दे सकते हो वसुधा को शेष स्वजीवन सारा।।

शासक और सेवक की भूमिका

सेवा क्षेत्र दो तरह के हैं – सरकारी और असरकारी। सरकारी सेवा की नींव में सेना है, असरकारी सेवा की नींव सामाजिक सहकार है। सरकारी सेवा परावलंबी व अस्वस्थ बना सकती है, असरकारी सेवा स्वावलंबी और स्वस्थ बनने का संबल देती है। सरकारी सेवा से समस्याएँ पैदा हो सकती हैं, असरकारी सेवा समाधान दिये बिना पूरी नहीं होती। शासक और सेवक की चेतना जिस भावनावश काम करती है उसी के अनुरूप गुण दोष उजागर होते हैं। जैसे–

१. शासक सत्ता का उपयोग अपनी सुविधा बढ़ाने में करता है। सेवक की प्रवृत्तियों से जनता सुविधा पाती है।

२. शासक संपत्ति को सरकारी नियंत्रण में रखता है। सेवक संपत्ति को जनता जनार्दन की मानकर उसका सदुपयोग करता है।

३. संपदा का अनियंत्रित उपयोग करना शासक की शान है। संपदा का स्वेच्छया मर्यादित उपयोग करना सेवक की पहचान है।

४. शांतिवार्ताएँ चालू रखना शासक की नीतिगत समझदारी है। सुमति पोषक शांति ही सेवक को प्यारी है।

५. शासक पर्यावरण संतुलन बिगाड़ने वाले उद्योगों को प्रश्रय देता है। सेवक पर्यावरण असंतुलन की अनदेखी नहीं कर सकता।

६. शासक शक्ति संपन्नता का पक्षधर होता है। सेवक की प्रतिबद्धता शील सम्पन्नता के प्रति रहती है।

अस्थायी लाभ स्थायी हानि

काल्पनिक न्याय की प्राप्ति के उपाय के तौर पर शासक युद्ध को बर्दाश्त करते हैं और युद्ध से समस्या हल होने की आशा रखते हैं, जबकि सेवक युद्ध-निषेध तो करता ही है, यह भी कहता है कि युद्ध से समस्याएँ हल होती दिखाई देती हैं, वे अस्थायी होती हैं, लेकिन जो बुराई होती है, वह स्थायी होती है। उसे ईश्वर या धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा समर्थनीय नहीं लगती। ऐसी देशभक्ति, बहादुरी या धर्मनीति की भी वह सराहना करने से विरत रहता है, जिसका फल हिंसात्मक होता है। लंकेश के वेश में नहीं, मुनिवेश में रावण ने सीताहरण किया। वैसे ही सामाजिक शीलहरण करने वाले धर्म व राजनीति का वेश धारण कर सेवा का मेवा खाने के लिए मानवीय दुर्बलताओं का व्यवसाय करते हैं। आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जगत् में इसी तरह के व्यवसायी सेव्य का शोषण, दमन, उत्पीड़न करते हैं और आदर्शों की छाया में पापों की दुनिया पलती है। यह जागतिक त्रासदी है और सेवा परायणता के लिए चुनौती भी।

अगर तूफाँ में किश्ती हो तो हो सकती हैं तदबीरें।
गर किश्ती में तूफाँ हो तो खुदा हाफिज है किश्ती का।।

सशस्त्र सेना का विकल्प

सेवा क्षेत्र में आये तूफाँ से किश्ती पार ले जाने की आकांक्षा रखने वालों को आचार्य विनोबा ने समझाया- मान लो युद्ध हो रहा है। सैनिक जख्मी हो रहे हैं। अपनी जान जोखिम में डालकर भूतदया से परिपूर्ण लोग उनकी सेवा में लगे हैं। शत्रु-मित्र का भेद किये बिना वे जख्मियों को संभाल रहे हैं। उनकी यह सेवा युद्ध को मान्य करने वाले समाज का एक हिस्सा मात्र है, उसमें युद्ध रोकने की शक्ति नहीं है। वह शक्ति विकसित करने के लिए **'बिना खड्ग बिना ढाल'** लिये गांधीजी ने सशस्त्र सेना का मुकाबला करने का प्रशिक्षण दिया। विनोबा जी ने शांति सेना गठित की और लोकनायक जयप्रकाश ने अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सेना का नेतृत्त्व किया। जीवन का लक्ष्य सत्य, जीवन की पद्धति संयम और जीवन का कार्य सेवा मानने वाले शान्ति सैनिक बनते हैं। विनाश में लगने वाले संसाधन विकास में लगाना सम्यक् दृष्टिवालों का काम है। असम्यक् दृष्टि निकृष्टाचरण में फांसे रखती है। सम्यक् दृष्टि श्रेष्ठाचरण से विमुख नहीं होने देती। **'जो तोकूं कांटा बोए, ताहि बोय तू फूल'**- कांटे बोने वाले के लिए भी फूल उपलब्ध कराने की कामनावश सम्यक् दृष्ट निष्काम सेवा करता रहता है। पीड़ा देने वाले नहीं, पीड़ा हरने वाले परोपकारी होते हैं। कहा है :

सरवर, तरुवर, संतजन, चोथो बरसे मेह।
परोपकार रे कारणे, चारूं धारी देह।।

कार्य कारण संबन्ध

सेवा दो तरह से की जाती है। दुःखी, पीड़ित, शोषित को येन–केन प्रकारेण राहत देना – यह एक प्रकार की सेवा है। दूसरे प्रकार की सेवा से राहत पाने वालों का दुःख, पीड़ा, शोषण मिटता है, क्योंकि साध्य के अनुरूप साधन की पवित्रता परिस्थिति बदलने में सहायक होती है। इसीलिए गांधीजी ने सेवावृत्ति को निर्माण का अधिष्ठान दिया। भूखे को खिलाना यह हुई सेवा। लेकिन भूख लगने पर फिर–फिर मांगने की मजबूरी न रहे – इस विचार से उसे उत्पादन का साधन देना – यह हुआ निर्माण। **'ईमान की रोटी व इज्जत की जिन्दगी'** महफूज रखने की दृष्टि से निर्माण में सहभागिता अपेक्षित है। इससे सेवा को सामाजिक मूल्य प्राप्त होता है। जो गुण सामाजिक नहीं बनता, वह आखिर में दोष हो जाता है। सेवा के साथ भी ऐसा ही है। सेवा जब वासनावृत्त होती है, तब स्वार्थ साधने की आतुरता उसके परिणाम की अनदेखी करवाती है। गो सेवा ही लें। गोपाल कृष्ण के देश में गोवंश की जितनी सेवा नहीं होती, उससे अधिक सेवा विदेशों में होती है। पश्चिमी यूरोप के देशों में गायों के रख–रखाव, खान–पान आदि की इतनी उत्तम व्यवस्था है कि उनकी दूध देने की क्षमता बढ़ गयी है। उन देशों के नागरिक भारतीयों की तुलना में दूध का अधिक उपयोग करते हैं एवं दुग्ध पाउडर, मक्खन निर्यात कर अपना कोष भी भरते हैं। लेकिन जैसे ही उन गायों की दूध देने की क्षमता घटी कि उन्हें मारकर खाने में वहाँ जरा भी संकोच नहीं किया जाता, क्योंकि दुग्ध वासनाजन्य उनकी सेवा जीवन निष्ठा के साथ संबद्ध नहीं है।

जीवन निष्ठा आधारित सेवा

भारत में गोसेवा का मूलाधार जीवन निष्ठा है। भारतीय गाय को मात्र पशु नहीं, वरन् समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली कामधेनु मानते हैं। माता–पिता व कुटुम्बी जनों की भांति यह भारतीय परिवारों का अंग बन गयी है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियां हैं : **'गाय कहूं या तुझको माय? अयि आबाल वृद्ध हम सबकी जीवन भर की धाय'**। भारतीय मनीषी तीर्थंकर ऋषभ देव, महात्मा गौतम बुद्ध, न्याय भाष्यकार महर्षि गौतम आदि उत्तम बैलों के प्रति श्रद्धाभाव व्यक्त करने वाले नामकरण कर गौरवान्वित होते हैं। गोकुल, ग्वालबाल, गोपालकृष्ण द्वारा गायों की इतनी सेवा हुई कि भारतीय साहित्य भंडार भर गया और गो महिमा के गीत घर–घर गाये जाने लगे। कृषि प्रधान देश के परिवारों की कन्याएँ दुहने में इतनी दक्ष बनीं कि उन्हें दुहिता कहा जाने लगा। वे ब्रह्म मुहूर्त में उठतीं, गायें दुहतीं। उनकी माताएँ दूध गरम कर दही जमातीं, बिलोतीं और सभी बालक–बालिकाओं को मक्खन मिश्री खिलाती थीं। जिन के यहाँ गायें न रहतीं, वे आकर दही बनाने वालों के यहाँ से निःसंकोच छाछ ले जाते, क्योंकि

'भोजनान्ते पिबेत् तक्रम्' भोजनोपरान्त छाछ पी लेने से कुपोषण का शिकार नहीं होना पड़ता।

सेवा-विस्तार

गाय अपनी देह का निचोड़ दूध और घी के रूप में उपलब्ध कराकर अपने वंश और दूसरे प्राणियों को बचाती है। उसके बछड़े बड़े होते ही अनाज, कपड़ा-उत्पादन, परिवहन आदि में सहायक बनते हैं। उनसे अहिंसा पालन में मदद मिलती है। इसलिए संस्कृति के श्रीगणेश के साथ भारत में गो सेवा आरंभ हुई। गोपालक अपने-अपने क्षेत्र की जलवायु के अनुकूल गो-नस्लें विकसित करते रहे। जिन्होंने ज्यादा विकास किया, वे इतिहास पुरुष बन गये। पांच लाख गाय पालने वाला उपनन्द, दस लाख पालने वाला नन्द और एक करोड़ पालने वाला नन्दराज कहलाया। पाण्डवों के पास गायों के दस वर्ग थे। हर वर्ग में आठ-आठ लाख गायें थी, जिनकी सार-संभाल सहदेव करता था। इन्द्रप्रस्थ की चालीस कोस की परिधि में पलने वाली गायों के गुण दोष उससे छिपे नहीं थे। वह बताता था कि किस गाय का दूध कितना गुणकारी है और किसका गोमूत्र सूंघ कर वन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती हो सकती है। महाभारत युद्ध में १८ अक्षोहिणी सेना मारी गयी। लगभग ५३-५४ लाख जवानों के मरने से हुई विधवाओं, उनके अनाथ बच्चों, वृद्ध माता-पिताओं और पराजितों के दुःखों को दूर करने का बीड़ा अरिष्टनेमि ने उठाया। वे कृष्ण के चचेरे भाई थे, जो राजुल को ब्याहने बारात ले गये। लेकिन रास्ते में बारातियों का भोज्य बनाये जाने वाले पशुओं की चित्कार सुनते ही तोरण द्वार से बिन ब्याहे लौटे। द्वारका से पुरी तक पदयात्रा कर उन्होंने आहार-शुद्धि, आचार-शुद्धि, व्यवहार शुद्धि, सेवा शुद्धि की सीख दी। जीवन, जीविका, जैव विविधता को सुरक्षित करने हेतु उन्होंने हृदयहीन व जड़ बनने से बचाने वाले गोधन को बढ़ावा दिया। उनकी सिखावन पार्श्वनाथ और महावीर के समय तक खूब फली-फूली। पोलासपुर के शकडाल ने दस हजार, वाणिज्य ग्राम के आनन्द, श्रावस्ती के शालिहि पिता व नन्दिनी पिता ने चालीस-चालीस हजार; चंपा के कामदेव, वाराणसी के सुरादेव, आभालका के चुल्लशतक, व कंपिलपुर के कुण्ड कौशिक ने साठ-साठ हजार; वाराणसी के महाशतक व चुलनीपिता ने अस्सी-अस्सी हजार गोवंश पाला। हर एक के पास खेती करने के लिए सैंकड़ों बैल जोड़ियाँ थीं। जितनी उपज होती, उसके चार भाग करते थे। एक भाग भूमि और भवन में लगाते, दूसरा भाग व्यापार में लगाते, तीसरा भाग जरूरत मंदों की मदद में लगाते और चौथा भाग सुरक्षित भंडार में रखते थे। उत्पादन, उपयोग, विपणन और विनिमय पारस्परिकता प्रधान होते हुए भी परोपकारोन्मुखी रहा, जिससे कुँआ, तालाब, धर्मशाला, पाठशाला, औषधालय, ग्रंथालयों का निर्माण संभव हुआ। इतनी समृद्धि बढ़ी कि यह देश सोने की चिड़िया बन गया। व्याकरण कार पाणिनी ने इस देश की सम्पन्नता का राज बताया कि **'गोमान्अयम्'**

यह गायों की बहुलता, गोरक्षण की तत्परता, गोपालन की कुशलता और गो–संवर्धन की लगन का परिणाम है। लक्ष्मी पूजा की भांति गो पूजा होने लगी। दादा धर्माधिकारी के शब्दों में वह कोई अंध विश्वास नहीं, न भावात्मक कर्मकाण्ड ही है। वह तो इंगित है – जीवन निष्ठा का। पृथ्वी पर सारे मूल्यों का चरम मूल्य जीवन है। मनुष्य मनुष्य की हत्या न करे – यह जीवननिष्ठा है और कम–से–कम गाय की हत्या न करे, यह जीव निष्ठा है। मानवीय संस्कृति के संकेत रूप में भारत की विश्व को दो देन असाधारण हैं : पहली निरामिष भोजन और दूसरी गो–पूजा। संसार में भारत ही एक ऐसा देश है, जहाँ करोड़ों नागरिक निरामिष भोजी हैं। भौतिक जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करते हुए भी वे जानते मानते हैं :

गोधन, गजधन, बाजिधन, और रतन धन खान।
जो आये संतोष धन, सब धन धूलि समान।।

आक्रमण के कारण और आक्रमणकारियों की नीति

संतोषी सन्तों के आगे शासक, संपत्तिवान, विद्वान् आदि नतमस्तक रहते हैं। लेकिन जब विद्या विवाद बढ़ांने, संपत्ति प्रदर्शन करने और शक्ति दूसरों को पीड़ित करने लग जाती है, तो उनकी कमजोरियों का लाभ आक्रामक लेते हैं। ईसा पूर्व चौथी–तीसरी सदी में भारत पर हुए आक्रमण इसके साक्षी हैं। सिकन्दर लूट कर संपत्ति के साथ अपने देश मकदूनिया में खेती करने के लिए भारत से दो लाख तीस हजार बैल भी ले गया! १५वीं सदी में कोलम्बस आया तो अपने साथ वह भी कामधेनु (गाय) और कल्पतरु (गन्ना) ले गया, जिसकी बदौलत इंग्लैंड, डेनमार्क, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि देश विकसित हुए। चौदहवीं सदी में बाबर उत्तर भारत का शासक बना। उसकी मृत्यु आगरा में हुई और उसे अपने गृह राज्य काबुल में दफनाया गया था। उसने भारत का शासनसूत्र अपने बेटे हुमायूं को सौंपते समय लिखा था : "ऐ मेरे पुत्र! भारतवर्ष में भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। प्रत्येक धर्म के नियम के अनुसार उनके साथ न्याय करना और विशेषकर गो हत्या से परहेज करना, क्योंकि ऐसा करने से ही इस देश की प्रजा तुम्हारे कृतज्ञतापाश में बंधी रहेगी।" (नवाब पुस्तकालय भोपाल में सुरक्षित पत्र)

सन् १६९३ में शत्रुञ्जय पर्वत पर स्थित तीर्थंकर आदिनाथ मंदिर के शिलालेख से ज्ञात होता है कि जैनाचार्य विजयसेन ने गो–बैल और भैंस की हत्या के विरुद्ध बादशाह अकबर से फरमान निकलवाया था। सिंधिया बहादुर के यहां सुरक्षित आदेशात्मक शाही फरमान इस प्रकार है : "समस्त पशु ईश्वर के बनाये हुए हैं। इनमें गाय की जाति, चाहे वह मादा हो या नर – अत्यंत लाभ देने वाली है। वह सबके जीवन का आधार है। हमारी ऊँची हिम्मत और साफ नियत का तकाजा है कि हमारे साम्राज्य में गोहत्या की रस्म

बिल्कुल न रहे। यदि कोई आदमी इस आज्ञा का उल्लंघन करेगा तो वह समझ ले कि उसको सुलतानी गजब में, जो ईश्वरीय कोप का नमूना है, फंसना पड़ेगा और वह दण्डनीय होगा।" तजुक-ए-जहाँगीर के लेखानुसार जहाँगीर ने अच्छे-से अच्छे सांड़ पाले। उसके शासन में गो प्रदर्शनियाँ लगती थीं और उत्कृष्ट गो-सेवा करने वाले पुरस्कृत किये जाते थे।

विदेशी और देशी व्याख्या

मुगल काल में गाय-बैलों की सुरक्षा का उतना खतरा नहीं बढ़ा, जितना अंग्रेजों के शासनकाल में। उन्होंने गांवों, ग्रामोद्योगों की भांति गाय-बैलों की भी सुविधाएँ छीन लीं। चारागाहसंबन्धी नाना कर लगाये। और गोचर भूमि में गोवंश का चरना रोक दिया। स्वतंत्रता की मांग करने वाले नेताओं ने गोरक्षा के प्रश्न को स्वराज्य से भी बड़ा माना, किन्तु अंग्रेज गाय का महत्त्व समझने में विफल रहे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने गो-सेवा को अन्तर्राष्ट्रीय अधिष्ठान दिया, जिससे रोम्या रोला को लिखना पड़ा कि – "गाय के बारे में गांधी-दृष्टि अनुपम है। वे इसे मानव-सभ्यता के विकास की उच्चतम स्वीकृति मानते हैं। बाइबल जहाँ कहती है कि पड़ोसी को अपनी ही तरह प्यार करो, वहाँ गांधी इतना और जोड़ देते हैं कि जिस किसी में प्राण है, वही तुम्हारा पड़ोसी है। समस्त मानवेतर जगत् की प्रतीक गाय है। वह भारत की श्रेष्ठ संगी है, प्रचुरता का उद्गम है। उसमें वे करुणा का काव्य देखते हैं।"

हिग्गटन बटन ने करुणाशील भारतीयों की मनः स्थिति का अध्ययन कर लिखा था कि यूरोप में अपना नाम बनाये रखने के लिए लोग गिरजाघर बनाते हैं, आधुनिक अमेरिका में विश्व विद्यालय बनाते हैं, उसी तरह भारत में गोशाला बनाते व चलाते हैं, जहाँ दया भाव से लूली, लंगड़ी बीमार गायों की जबतक वे अपनी मौत न मरें, अच्छी तरह देखभाल की जाती है। दया धरम का मूल मानकर धर्म-गुरु कहते हैं :

दया सुखां री वेलड़ी, दया सुखां री खान।
अनन्त जीव मुगते गया, दया तणा फल जान।।

वासना मुक्त रहकर दया भाव से सेवा करने वालों को मुक्ति मिलती है। जैन विचारक वैसी सेवा को वैयावृत्त कहते हैं। बाल सेवा, वृद्धसेवा, रुग्ण-सेवा, गोसेवा और जीव जगत् की सम्यक् सेवा तीर्थंकर पद प्राप्त करने का निमित्त बनती है। सेवक का चित्त स्वस्थ है तो वह शस्त्र भी शास्त्र बना लेता है और अस्वस्थ है तो शास्त्र भी उसके शस्त्र बन जाते हैं। मूल्य शस्त्र या शास्त्र का नहीं, सेवोन्मुखी चित्त का है। श्रेयसाकांक्षी सेवक एक दूसरे को तोड़ने वाली शक्तियों का उपयोग जोड़ने में करता है और प्रेयसाकांक्षी सेवक एक दूसरे को जोड़ने वाली भाषा, लिपि, जाति, उपासना, सभ्यता को भी तोड़ने का

हथियार बना बैठता है। वह भूल जाता है कि दूसरों को मारने से नहीं, बचाने से ही सामुदायिक जीवन निरापद रह सकता है। मानव जंगल के कानून छोड़कर जीवन नष्ट होने से बचाने की दिशा में क्रमशः बढ़ा – यही सभ्यता का इतिहास है। सेवा से सभ्यता समृद्ध होती है और सेवा की समझ ही मन को संवेदनहीन व तन को संयमहीन होने से बचाती है। वासनासक्त सेवक संकीर्ण वृत्तियों के चक्रव्यूह में फंस जाते हैं। वे अगल-बगल में रहते हुए भी एक दूसरे को सह नहीं पाते। कहते हैं – तुम अपनी चहारदीवारी में रहो, हम तुम्हें नहीं छेड़ेंगे। हमें भी अपनी चहारदीवारी में रहने दो, तुम भी मत छेड़ो। इससे सहिष्णुता नहीं – सद्गुण विमुखता आती है, श्रेष्ठ भावनाएँ ओझल हो जाती हैं।

यह हवा बदलने की खातिर आँधी की आज जरूरत है।
लपटों पर बैठी दुनिया को गांधी की आज जरूरत है।।

परिवेश बदलने की अनुकूलता

आजादी के छः दशकों बाद, अब जबकि आर्थिक दृष्टि से गाँव हमारा विश्व एवं सांस्कृतिक दृष्टि से विश्व हमारा गाँव बन रहा है, तब अपनी, समाज की, सम्प्रदाय की, राज्य की कमियों से कब तक चिपके रहेंगे? परंपरागत कुरीतियों और धर्मान्धतापोषी कर्मकाण्डों से मुक्त होकर समष्टि की सेवा करनी चाहिये। भारतीय मूल की सुनीता विलियम्स ने अंतरिक्ष में झंडा गाड़ कर समझा दिया है कि भिन्न-भिन्न सभ्यताएँ एवं संस्कृतियां परिपूरक हों तो सेवा क्षेत्र व्यापक हो सकता है। वैसा परिवेश बनाने का श्रीगणेश भूदान मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रांति कर चुकी है। देश भर में भूदान पदयात्रा करने वाले विनोबा जी से एक दिन कोई राहगीर पूछ बैठा – बाबा, आपकी यात्रा कहां जा रही है? वे बोले – जनता रूपी विठोबा का दर्शन करने जा रही है। पंढरपुर, रामेश्वर, काशी, काबा और येरुशलम ही हमारे तीर्थ नहीं, वरन् प्रत्येक गाँव और गाँव का हर घर हमारा तीर्थ है। घर-घर में रहने वाले नर-नारी हमारे देवता हैं। उन्हीं की सेवा के लिए भूदान-पद-यात्रा है।

सेवाकांक्षी भक्त मीरा ने ठाकुर गिरधर से चाकरी में रखने हेतु क्या निवेदन किया था?

म्हाने चाकर राखो जी। गिरधारी लला म्हाने चाकर राखो जी।
चाकर रहसूं बाग लगा सूं नित उठ दर्शन पासूं,
वृन्दावन की कुंजगलिन में गोविन्द लीला गासूं जी।

हृदय में राम, मुंह में नाम, हाथ में काम होने से ठाकुर की मरजी चाकर की खुदगर्जी को खुदा की मर्जी में परिवर्तित कर देती है।

'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः' मानने वाला नर-नारायण से अनुरोध करता है :

अन्तर मम विकसित करो अन्तरतर हे।
निर्मल करो उज्ज्वल करो सुन्दर करो हे।

अविभक्त चेतन अचेतन की सेवाधारा

गांधी जैसे भारत सेवक की प्रार्थना सेवा को ठोस धरातल देने और सेवकों को दिशा बोध कराने वाली है–

हे भगवन्!
हमें वरदान दो कि सेवक और मित्र के नाते
जिस जनता की हम सेवा करना चाहते हैं,
उससे कभी अलग-थलग न पड़ जायें
हमें त्याग, भक्ति और नम्रता की मूर्ति बना,
ताकि इस देश को हम ज्यादा चाहें
और ज्यादा समझें।

जनता के सुख-दुःख में सम्मिलित सेवकों का समर्पण चेतन-अचेतन को रूपान्तरित कर रक्षण, पोषण, संवर्धन की व्यवस्था का अंग बना लेता है। व्यवस्था मूलक सृष्टि सत् चित् आनन्द का संगम है, जहाँ सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम् की अविभक्त सेवा धारा प्रवहमान रहकर हमें रक्षित पोषित, संवर्धित करती रहती है। हमें चाहिए :

एक बनें हम नेक बनें हम विश्व शांति हित कार्य करें।
पर्यावरण संतुलन साधें जन गण के दुख दर्द हरें।।



शिक्षा एवं सेवा के ऋद्धि-सिद्धिदायक प्रकल्प

भारतीय स्वभावतः सौम्य और शीलवान हैं, क्योंकि इनकी संरक्षिका गाय है। इसे गोमाता कहते हैं। घर-घर में गाय पाली जाती थी, लेकिन जब उसका रख-रखाव करना संभव नहीं रहा और बीमार, बूढ़ी होते ही गोपालक भी उसे छोड़ने लगे। छुट्टा पशुओं के साथ वह गली-सड़कों पर घूमती, अखाद्य वस्तुएँ खाती और बेमौत मर जाती थी, तब दयालु गोभक्तों ने गोशालाएँ खोलीं, जहाँ गायों की सेवा होने लगी। काशी वासियों ने महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी की प्रेरणा से १८८६ में **श्री काशी जीवदया विस्तारिणी गोशाला एवं पशुशाला** स्थापित की। इसके लिए जमीदारों ने भूमि दी। गो भक्तों ने भी अपने अनुदान से भूमि क्रय करवायी। नगर के मध्य गोलघर स्थित सदर गोशाला प्रधान केन्द्र बना, शाखाएँ ग्रामीण क्षेत्र में खुलीं।

इतिहास के नये अध्याय का श्रीगणेश

गोशाला का शताब्दी वर्ष प्रारंभ हुआ। संत विनोबा के निर्देशानुसार 'रोको भाई रोको' नारा लगाने वाले सत्याग्रही कलकत्ता कतलखानों की ओर रेल एवं सड़क मार्ग से ले जाने वाले गोवंश को मुगलसराय व पड़ाव पर रोकने लगे। गोवध निवारण अधिनियम के अधीन उ.प्र. में न गोवध हो सकता था, न परिवहन कर कतल खाने पहुँचाया जा सकता था, लेकिन रोके गये गोवंश को संभालने की सरकारी व्यवस्था नहीं होने से सत्याग्रहियों के अनुरोध पर काशी गोशाला आगे बढ़ी। १४ अगस्त १९८६ को प्रातः सूर्योदय के समय मुगलसराय में रुके १८२ गाय-बैल लाकर गोशाला प्रांगण में बांध लिये। गोशाला के इतिहास में इस तरह नया अध्याय आरंभ हुआ। उसके बाद जनपद के कई पुलिस थानों द्वारा जब्त गोवंश भी न्यायालय के आदेश से गोशाला की सुपुर्दगी में आने लगा। दया की चाह ने ऐसी राह खोली कि धीरे-धीरे देश भर की गोशालाएँ गोरक्षा आन्दोलन का अंग बन गयीं और संविधान सम्मत भारतीय पशु नीति को भी धरातल मिला।

शताब्दी समारोह

गोवंश के लिये चारा पैदा करने हेतु सदर गोशाला से ८ कि.मी. दूर स्थित बावनबीघा परिसर में नलकूप लगा। कृषि होने लगी। अच्छी नस्ल के सांड प्राप्त किये। गायों की भी प्रजनन क्षमता बढ़ी। गोसेवकों के परिश्रम से परिसर हराभरा हो गया, तो वहीं १८ नवम्बर १९८६ को काशी गोशाला शताब्दी समारोह हुआ, जिसका उद्घाटन

करते हुए राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने स्वीकार किया कि "गोहत्या की माँग को लेकर विनोबाजी ने उपवास किया था। सरकार ने माँग पूर्ति का वादा कर अनशन तुड़वाया, किन्तु वादा पूरा नहीं किया। इस वादा खिलाफी के लिये मैं अपने आपको भी जिम्मेदार मानता हूँ। गायों की सुरक्षा राष्ट्रीय कार्यक्रम है। इसे पूरा करने की जिम्मेवारी अधिकारियों की है। गोशाला और गोरक्षा के लिए प्रान्तीय सरकारों व केन्द्र को पूरी मदद करनी चाहिए। स्वैच्छिक संस्थाएँ भी यह काम करने के लिये आगे आयें।" राष्ट्रपति जी ने गोसेवा-स्मारिका (१९८६) लोकार्पित की और गोरक्षार्थ दिलचस्पी ली। सचित्र समाचार प्रकाशित कर प्रचार माध्यमों ने काशी गोशाला को राष्ट्रीय क्षितिज पर ला दिया।

अ.भा. कृषि गोसेवा संघ, आचार्य-कुल, गोरक्षा प्रेमी एवं सत्याग्रही गोशाला की कार्ययोजना में सहभागी बनने लगे। कार्यकर्ताओं को म.गांधी की सिखावन याद आयी। उन्होंने कहा था : "हिन्दुस्तान में सबसे ज्यादा गोशालाएँ मारवाड़ी व्यापारी चलाते हैं। वे उसमें लाखों रुपये खुशी से देते हैं। उनके बिना गोरक्षा का प्रश्न हल नहीं हो सकता। वे हर वर्ष जितना खर्च करते हैं और गोशालाओं को जितना देते हैं; न उतनें जानवर पलते हैं, न नये जानवर ही तैयार होते हैं। गोशाला के संचालक खुद पैसा नहीं खाते, इतने से ही मान लिया जाता है कि संस्था ठीक चल रही है। किन्तु इससे गोमाता की रक्षा नहीं हो सकती। उसके लिए तो कार्यदक्ष मनुष्यों का एक-एक क्षण इस कार्य को मिलना चाहिए। धार्मिक दृष्टि से दान देने वाले लोग भले ही कार्यकुशल न हों, परन्तु संचालकों में तो व्यापारी से ज्यादा कुशलता, उद्यम इत्यादि होने चाहिए। गोशालाएँ यदि व्यापारिक दृष्टिकोण से चलायी जायें तो उनमें शास्त्र का विशेष ज्ञान रखने वाले लोग काम करेंगे और नित्य नये प्रयोग कर अधिकाधिक गायों की रक्षा करेंगे (८/९/१९२०)।

हिन्दुस्तान में १५०० गोशालाएँ बतायी जाती हैं, यदि वे सुव्यवस्थित होकर डेयरियों में बदल जायें तो इस देश में गोरक्षा का प्रश्न बहुत सरल हो जाये (२३/६/१९२६)।

गायों का वध अर्थशास्त्र की दृष्टि से लाभकारी हो गया है। अगर गायों के कत्ल से आर्थिक लाभ होना बन्द हो जाये तो गोवध अपने आप रुक जायेगा। इसके सिवा गायों की नस्ल में सुधार करना भी जरूरी है, जिससे गायों को मारने से लाभ मिलना बन्द हो जाये (२२/१/१९२९)।

सिखावन के अनुरूप कार्य करने से संरक्षित गोवंश लाभकारी बना। दुर्लभ होती लालसिंधी नस्ल संवर्धित हुई। शताब्दी समारोह की यह उपलब्धि रही कि देखते-देखते बावनबीघा परिसर : गोकुल गोशाला बन गया।

जीव जन्तु कल्याण बोर्ड, उ.प्र. गोसेवा आयोग आदि इसे प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में मान्य करते हैं।

अनुपयोगी को उपयोगी बनाने वाली कार्यशाला

जिसे पशुपालक अनुपयोगी और सरकार कतल के योग्य करार देती है, वैसे कमजोर, घायल गोवंश को संरक्षित करने के लिये गोशाला ने हरहुआ-जन्सा मार्ग पर स्थित रामेश्वर गोशाला से ३ कि.मी. दूर सड़क से अन्दर की ओर बरेमा ग्राम के निकट ऐसा भूखंड चुना, जहाँ की उर्वर माटी वरुणा की बाढ़ में बह गयी, गहरे कटाव ने गोचर को बीहड़ बना दिया। जमीन के भीतर कंकर की पर्तें जम गयीं। १०-१२ प्रतिशत क्षार होने से तृण भी नहीं जमता था। वहाँ समुचित चिकित्सा, संतुलित दाना-पानी, अच्छी देखभाल का प्रबंध किया। खुरपका, मुँहपका, गलाघोंटू आदि का इलाज होने के बाद सुधरा गोवंश देखकर स्पष्ट हो गया कि कत्ल खाने जाने वाला गोवंश अनुपयोगी नहीं होता। ९० प्रतिशत गायें दुधारू होती हैं। बैल भी काम करने लायक रहते हैं। पोषण प्राप्त जो गायें गोपालकों ने पसंद कीं, उनमें वितरित कर दी गयीं। बैलगाड़ी या हल जुताई करने वाले बैल ले गये। जिन्हें किसी ने नहीं लिया, उनके लिए विशेष प्रबन्ध किया गया। उन्नत सांड़ों की अनुकूलता, हरियायी गायों की खुराकी, ब्लडसीरम आदि की जाँच होती रहने से गर्भपात नहीं हुआ। पहली ब्यांत में बाछे-बाछी ७ से १५ किलो वजन के हुए, दूसरी ब्यांत के बाद ३० से ४० किलो वजन के होने लगे। पहले मृत्यु दर २० प्रतिशत रही, बाद में १० प्रतिशत रह गयी। जो गायें वर्षों से गाभिन न होने के कारण सूखी थीं, वे विशेष आहार एवं दवा खाकर उत्प्रेरित विधि (इण्डयूज लैक्टेशन) से बच्चे प्रजनित करने लगीं। जो गायें गाभिन नहीं हुईं, वे भी ४० दिन सूखी (ड्राई) रहकर फिर दूध देने लगीं। प्रजनन उत्पादन क्षमता बढ़ने से कुछ गायों ने ब्यांत की अवधि (३०० दिन) में १,८०० लीटर दूध दिया। जो गायें एक लीटर ८०० ग्राम दूध देती थी, उनकी संतति ४ लीटर और फिर उनकी संतति ६ से ८ लीटर तक दूध देने वाली बन गई। गोरक्षण, गोपालन, गो संवर्धन फलप्रद रहा।

१. गायों की क्रम संख्या, २. नस्ल, ३. जन्म तिथि, ४. रंग, ५. माता-पिता (गाय-साँड़) के नाम, ६. माँ कितना दूध देती थी और एक ब्यांत में कितना दूध दिया, ७. कितने दिन सूखी रही, ८. कब गाभिन हुई, ९. कब रोग का टीका लगा, आदि विवरण रखने से अच्छे परिणाम आये। बेकार लोग काम पाये। कार्यकर्ताओं को आनन्द और शिक्षण मिला।

गोखुराकी में ४५ प्रतिशत चोकर, ३७ प्रतिशत चूनी, १५ प्रतिशत खली, २ प्रतिशत मिनरल और १ प्रतिशत नमक देने से गोबर-गोमूत्र पर्याप्त मिलने लगा। उसका उपयोग करने के लिए गोबर गैस संयंत्र लगाये, जिनसे चारा काटना, दाना पकाना, खाना बनाना, खटालों को रोशन करना और खेतों में खाद (स्लरी) देना संभव हुआ।

'ऊसर बरसहि तृण नहिं जामा' ऊसर में तृण नहीं जमता था, वहाँ गोबर-गोमूत्र डालने से 'हरित भूमि तृण संकुल' हो गयी। भूमि कटाव रोकने हेतु जगह-जगह मेड़बन्दी

की गयी। खड्डों को पाटा। सीढ़ी नुमा खेत बनाये। ५-५ फीट की कतार में ३-३ फीट की दूरी पर १-१ फीट के गड्डों में अच्छी मिट्टी व गोबर खाद डाली। वर्षा ऋतु में खाली जमीन की भली प्रकार निराई गुड़ाई कर सुबबूल, नेपियर रोपने से ऊसर कम हुआ। धीरे-धीरे जमीन इतनी अच्छी बन गयी कि एक हजार गोवंश को बारहों मास खिलाने लायक हरा चारा और गोसेवकों के लिये आवश्यक चावल, गेहूँ, ज्वार, जौ, मक्का, चना, मटर, अरहर, उर्द, मूंग, टमाटर, गाजर, गोभी, धनिया, पालक, मूली, शलजम, बैंगन, परवल, लौकी, भिण्डी, करेला, आम, अमरुद, पपीता, केला, आंवला, बेल, फालसा, नीबू, नारंगी का भी उत्पादन होने लगा। भाँति-भाँति के पुष्पों से परागण लाती मधुमक्खियों, कलरव करते पक्षियों, नृत्य मग्न मयूरों, रंभाती गायों, उछलते-कूदते बाछे-बाछियों, स्प्रिंकलर सिंचाई करते फव्वारों ने परिसर की इतनी श्री वृद्धि की कि उसका नाम **मधुबन गोशाला** हो गया। बेकार पशु, बेकार भूमि, बेकार आदमी और बेकार संसाधन का राष्ट्रीय विकास में कारगर उपयोग करने की कला हस्तगत हुई।

गोसेवकों की समझदारी

काशी गोशाला की सफलता और दयापरायणता का लाभ असमर्थ गोपालक अपनी बीमार, अपंग, मरणासन्न गायों को जमा कर उठाते थे, वैसे बड़े-बड़े औद्योगिक घरानों, कांजी हाउस वाली नगर पालिकाओं, सरकारी डेयरियों और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसे प्रतिष्ठानों ने भी अपना अलाभकारी गोवंश गोशाला पहुँचाना आरम्भ कर दिया। कई गायों की शल्य चिकित्सा कर उनके पेट से डेढ़-दो किलो प्लास्टिक थैलियाँ निकाली गयीं। मरणासन्न गोवंश को कुत्ते, कौओं से बचाने हेतु जालीदार खटाल बनाये गये।। उनकी समुचित व्यवस्था मधुबन गोशाला से ३०० मीटर दूर स्थित ३० एकड़ के भूखंड में की गयी।

मौत के मुँह में पड़े लगभग ३०० गोवंश से कम गोबर मिला तो एक किलो गोबर में ३९ किलो खरपतवार मिलाकर नडेप खाद तैयार की। उसके लिये १२ फीट लम्बी ६ फीट चौड़ी ३ फीट ऊँची ईंटों की जालीदार टंकी बनती है। उसमें गोबर मिट्टी व खरपतवार डालते हैं। तलहटी गोबर से गीली होती है, किन्तु घासयुक्त कचरा सूखा होता है। उसके वजन के बराबर पानी का छिड़काव किया जाता है। छः परतों में पड़ी लगभग १३५० किलो सामग्री वाली टंकी मिट्टी की तह से ढक कर लीपते हैं। ४८ घंटे बाद खाद बनने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। दरारें पड़ने या नीचे दबने से पानी का छिड़काव कर उसे गोबर मिट्टी से ठीक करते हैं। प्रायः चार माह में नडेप खाद तैयार होती है। वह तार वाली चलनी से छानकर खेत में डाली जाती है। एक गाय के गोबर से तैयार ८० टन खाद बनती है, जो ८ एकड़ के लिए पर्याप्त है। वैज्ञानिक परीक्षण के अनुसार उसमें ८०० किलो नाइट्रोजन, ५६० किलो सुपर फास्फेट, १०४० किलो पोटाश और ७७,६०० किलो अन्य द्रव्य होते

हैं। एक गाय अथवा एक बैल का गोबर वर्ष में यूरिया के ३६, सुपर फास्फेट के १८ तथा पोटाश के ५४ बोरे बराबर शक्ति देता है। उससे २ टन खाद्यान्न तथा ६ टन भूसा प्राप्त हो जाता है।

वर्ष में १० टन खाद बनाने वाली टांकी पर लगभग १००० रु. खर्च बैठता है। ऊसर भूमि में १० टांकी बना ली जाय तो १०० टन जैविक खाद तैयार हो सकती है।

गोसेवक गायों की खटाल की धुलाई के पानी से खेतों में हरा चारा पैदा करते हैं। मक्का, बाजरा, ज्वार आदि जिन फसलों से पोषक तत्वों का नाश होता है, उनकी तत्काल पुनरावृत्ति नहीं की जाती। एक बार गहरी जड़ जमाने वाले बीज डालते हैं, दूसरी बार ऊपरी सतह पर रहने वाले। जिस खेत में बरसीम, मटर, चना बोते हैं, उसमें फिर सूडान, चरी, ज्वार, बाजरा, मक्का, बोने से भूमि की उर्वरा शक्ति का संतुलन बना रहता है। खेतों की मेड़ पर वृक्ष कपास लगाते हैं। पीपल, बबूल, सागोन, शीशम, बरगद, कदम जैसे वृक्ष लगाने के साथ एक लाख नीम पौध भी लगाये।

गोशाला के निकटवर्ती गाँवों वाले धर्म भावनावश मृत गायों को गंगा में प्रवाहित करते थे। उन्हें प्रदूषण मुक्ति का विचार समझाया और बताया कि 'मुहू चरम सेवत चरन' का आशय समझ कर महात्मा गाँधी ने वर्धा में चर्मालय खड़ा किया था। वहाँ बने मृत चर्म के जूते-चप्पल सारे देश में श्री गाँधी आश्रमों पर मिलते हैं। मृत पशु उपयोग केन्द्र में प्राकृतिक विधि से चर्म शोधन हो, शोधित चमड़े का उपयोगी सामान बने, हड्डी से उर्वरक तैयार हो, गाय के खुर सींग से सरेस बने और देशी गायों में मृत्यु-उपरान्त गोलोचन हो, तो वह निकाला जाय। संसार में जितना चमड़ा होता है, उसमें भारत का एक तिहाई हिस्सा है। इसके बावजूद चमड़ा निकालने, छिलने, पकाने का पर्याप्त साधन न होने से ४० प्रतिशत कच्चा चर्म विदेश चला जाता है। उसका देश में उपयोग होने लगे तो सैकड़ों परिवार रोजगार पायेंगे। गाँव-गाँव में मृत पशु का चमड़ा निकाल कर मांस फेंकने से चील, गिद्ध, कौवे, बीभत्स दृश्य पैदा कर आसपास के वातावरण को बदबू से भरते हैं, उससे भी मुक्ति मिलेगी।

'एक्ट लोकली थिंक ग्लोबली' की अवधारणा के अनुसार वृन्दावन गोशाला सामान्य काम को असामान्य रूप से उत्कृष्टता पूर्वक कर रही है। उसकी उपलब्धियाँ देखकर ही मीरजापुर जनपद के अन्तर्गत चुनार रेलवे स्टेशन के निकट बसे गोपालग्राम में सूखी गाय व सूखी खेती से क्षेत्र का समुचित विकास हो रहा है।

अधिक उत्पादन अधिक लोगों द्वारा

वरुणापार रामेश्वर, बाबतपुर संपर्क मार्ग पर बलुई दोमट भूमि वाला २२ एकड़ का भूखंड है। वहां १६ किलो वाट का नलकूप लगाने एवं नालियां बनाने से खेतों में अनाज,

दाल, फल, सब्जियाँ, औषधियाँ, कपास की उपज होने लगी। मास प्रोडक्शन (अधिक उत्पादन)वाई मासेज (अधिक लोगों द्वारा) किये जाने से गोपालन में रुचि लेने वाले समझे कि सुविचारित योजना से कम भूमि भी अच्छी आय का साधन है। मन्दिर मार्ग पर होने के कारण इसका नाम **पंचशिवाला गोशाला** हो गया। कार्यविधि से निम्न बातें ध्यान में आयीं :

❶ पशु-पक्षी व पृथ्वी रक्षा में संतुलन रहने से विकास होता है। ❷ जो बेल ऊपर फैलती है, उनके नीचे सब्जियाँ लग सकती हैं। ❸ पौधों के बीच-बीच में तुलसी लगाने से फसल के रोग कम हो जाते हैं। सरसों के साथ सौंफ बोने से माहो रोग से बचाव होता है। ❹ तुलसी नीम आडोमस के गमले कमरे में रखें जायँ तो मच्छरों का प्रकोप नहीं होता। ❺ लकड़ी, किवाड़, मेज, कुर्सी आदि के लिए प्रति व्यक्ति औसत ५ वृक्ष कटते हैं तो कम से कम १० वृक्ष प्रति व्यक्ति लगाने का अभियान चल सकता है। ❻ जहाँ गोवंश रहता है, वहां उपयोगी वृक्ष लगाना उपयोगी रहता है। ❼ एक बैल जोड़ी के गोबर से एक हार्सपावर का इंजन ८ घंटे चल सकता है। ❽ सूर्यमुखी आदि फूलों के उत्पादन से मधुमक्खियां आकृष्ट होती हैं। परागगण से फसल अच्छी होती है, फलों की मिठास बढ़तीं है तथा मधु से अतिरिक्त आय भी होती है।

चारे की अनेक प्रजातियां तथा उन्नत किस्म के बीज विकसित किये बिना न गोपालक सुख से रह सकते हैं, न ही कृषक। वृक्षाधारित कृषि – गोविज्ञान की ग्रामोपयोगी तकनीक पंचशिवाला गोशाला का आधार है।

गो़ आधारित समग्र विकास

सौ एकड़ भूमि में एक हजार गाय-बैल पालने और उनके विकास से लाखों लोगों को रोजी-रोटी सुलभ कराने वाले प्रकल्प रामेश्वर गोशाला में चले। हरियाणा, गंगातीरी नस्ल की गायों से दूध मिला और परिवहन क्षम बैल भी मिले। उनकी खुराकी, दवा, रख-रखाव पर जितना खर्च होता है, उतना गाँव का साधारण किसान भी वहन कर सकता है।

कतलखाने जाने से अलग-अलग नस्ल का एक दशक में साठ हजार गोवंश बचा। उसे स्वस्थ व पुष्ट कर सरकारी या पंचायत की सिफारिश पर जिन जरूरतमंद ग्रामीणों को दिया, उनकी आय बढ़ी और श्रम दिवस भी सृजित हुए। गो सेवकों की कन्याओं के विवाह में संवर्धित बछियाएं देते रहने से गाँव-गाँव में दुग्ध उत्पादन बढ़ा। गोरस भंडार खुले। गोपालक गो दुग्ध का लाभकारी मूल्य पाने लगे। अनेक तरुणों ने स्वरोजगार के तहत गायें खरीदीं। वे सुबह शाम दो-दो घंटे गोसेवा कर अच्छी कमाई कर रहे हैं। गोरस भंडार द्वारा १३५ गाँवों के गोपालकों के घर लगभग एक लाख रुपये प्रतिदिन पहुँच रहे हैं।

गोपालन के साथ कृषि विकसित हुई। आलू, मटर, टमाटर आदि सब्जियों का उत्पादन बढ़ा। कृषि उत्पादों से जैम, सॉस, चिप्स बनने लगे। फल संरक्षण करना आया। बंजर भूमि में उत्पन्न गुलाब से गुलकन्द, गुलाबजल, गुलाब शर्बत तैयार हुआ। अचार, पापड़ बनाने जैसे गृह उद्योग पनपे। महिलाओं ने सिलाई, कढ़ाई, बुनाई सीखी। 'अर्निंग एण्ड लर्निंग थ्रू डूइंग' का पाठ्यक्रम सामाजिक समरसता बढ़ाने में सहायक बना। स्वास्थ्य शिक्षा, एग्रोइण्डस्ट्रीज, मोटर मैकेनिक, इलेक्ट्रानिक, बुनकरी, हर्टीकल्चर आदि प्रवृत्तियों में तरुण रुचि लेने लगे। धान से चावल, गेहूं से आटा दलिया, चना-मूंग से दाल तैयार की। उसकी अच्छी मांग है। गोमूत्र का औषधीय उपयोग किया। १० किलो गोमूत्र में २ किलो नीम की पत्ती डालकर तांबे के बर्तन में उबालने से ५ लीटर पेस्टीसाइड तैयार हुआ। उसमें सौ गुना पानी मिलाकर छिड़कने से पौधों में रोग नहीं लगे। सौ रुपये किलो बिकने वाला यह पेस्टीसाइड सैंकड़ों पंचायत सदस्य ले गये। इसके अलावा केंचुआ खाद भी उपयोगी रही।

बैलचालित चारा काटने की मशीन, बैलचालित ट्रैक्टर, बैलचालित जनरेटर और तीन-चार टन बोझा ढोनी वाली बैलगाड़ियाँ, बनीं, जिससे बैलों को वर्ष में २५०से ३०० दिन काम मिलने लगा। २५ दिसम्बर १९९७ से ५ जनवरी १९९८ तक **'गांधी वैश्वीकरण बनाम स्वावलंबन एवं स्थायी विकास'** विषयक संपन्न अन्तर्राष्ट्रीय कार्यशाला में देश-विदेश के ८७२ प्रतिनिधि गोशाला में एकत्र हुए। उनकी सिफारिश के अनुसार २५ अक्टूबर से १ नवम्बर १९९८ तक ग्रामोदय मेला लगा। गो उत्पाद, कृषि उत्पाद, सुधरे कृषि यंत्र, कृषि गोविज्ञान प्रकल्प प्रदर्शित किये गये, जिन्हें देखकर मुख्यमंत्री ने गो सेवा आयोग (उ.प्र.) गठित करने की घोषणा की।

भूख भीख भय, भूख मिटाने वाले प्रकल्प

काशी गोशाला ने गो आधारित समग्र विकास की संभावनाएं प्रकट कीं, उनसे सामुदायिक जीवन को श्री सम्पन्न बनाने का काम सुरभि शोध संस्थान ने किया। वाराणसी रेलवे स्टेशन से लगभग ४५ किलोमीटर एवं मिर्जापुर रेलवे स्टेशन से ३० किलोमीटर दूर संस्थान ने ऐसी जगह ग्राम संकुल बसाया, जहां विन्ध्याचल की पहाड़ियां तो हैं, पर पत्थरों की अंधाधुंध खोदाई होती है। वन क्षेत्र है, पर श्री हीन। वन के जीव-जन्तु या तो मार दिये गये या मर गये। पहाड़ी नाला है, पर सूखा हुआ। जहाँ टयूबवेल सफल नहीं हुआ, वहां बरसाती नाला बांधकर जल प्रंबध किया। वर्षा में प्रत्येक रविवार को नंगी पहाड़ियों पर श्रमदान अभियान चलाकर वृक्ष लगाये। बीज, औजार व सुविधाएं मिलने से अगल-बगल के गांव वालों ने उत्साह के साथ श्रमदान में भाग लिया। वृक्षारोपण के लिये गड्ढे बनाये और पौधे लगाये। कुछ ही बड़े हुए। अधिकतर पशु चर गये, फिर भी उनके लिये खुदे खड्डों में पानी जमा हुआ, जिसके रिसने से बचे पेड़ फले-फूले। पठारी

क्षेत्र में हरियाली बढ़ी। प्राकृतिक संसाधन आधारित परंपरागत कला कुशलता से भूमि सुधार, फसलचक्र, जैविक खाद, हरित क्रान्ति और श्वेत क्रान्ति को जनाधार मिला। आचार्यकुल सुरभि शोध संस्थान एवं कापार्ट के संयुक्त तत्वावधान में **जीवन जीविका, जैव विविधता रक्षणार्थ** २५-२७ दिसम्बर २००५ को **अन्तर्राष्ट्रीय कार्यशाला** आयोजित हुई, जिसमें सम्मिलित विश्व विद्यालयों, उच्च शिक्षा संस्थाओं, रचनात्मक संगठनों से संबद्ध २४१ प्रतिनिधियों ने देखा कि ऊर्जारक्षण, पर्यावरण संतुलन, गुणवत्ता में सुधार होने से कैसे जीवन, जीविका, जैव विविधता का रक्षण संभव है। नेशनल सैंपल सर्वे आर्गेनाइजेशन ने सर्वे कर पाया कि ऐसी ग्रामोपयोगी व्यवस्था में पुरुषों से भी अधिक लाभ महिलाओं को मिला। जहां लखनऊ में ६० फीसदी, कानपुर में ५० फीसदी लोग बेकार हैं, वहां वाराणसी में मात्र ३५ फीसदी ही हैं। इससे गो आधारित समग्र सेवा के योगदान का अनुमान लगाया जा सकता है।

सफलता का पैमाना

सुरभि ग्राम की गीता गोशाला ने गंगातीरी गो नस्ल विकसित की। सामान्य कद-काठी और साधारण ग्राम परिवार में पलने वाली इस गाय की दुग्ध उत्पादन क्षमता १ लीटर ५०० ग्राम के आसपास थी, जो बढ़कर १५ से १६ लीटर प्रतिदिन तक पहुंची। भारतीय पशुधन प्रदर्शनी (२००२) में इस नस्ल के सांड़, बैल, गाय, बाछे-बाछियों को १४ पुरस्कार मिले।

गंगातीरी नस्ल की दो गायों से एक एकड़ जोत वाला किसान अपने पांच सदस्यों का भरण-पोषण कर सके-ऐसा प्रयोग सुरभि शोध संस्थान करता है और तदनुकूल प्रशिक्षण देता है। भूमि का इस प्रकार समायोजन किया जाता है :

१. १ बिस्वा में मकान
२. १ बिस्वा में तालाब
३. १ बिस्वा में गोशाला
४. १ बिस्वा में खलिहान, खेत-मैदान
५. १ बिस्वा में रास्ता-सड़क
६. १ बिस्वा में फुलवारी
७. १ बिस्वा में हरी सब्जी
८. १ बिस्वा में स्वास्थ्य वाटिका (नीबू, पपीता, केला अमरूद, शरीफा, मोसम्मी आदि)
९. १ बिस्वा में मसाला (धनिया, मेथी, सौंफ, मंगरइला, हल्दी आदि)
१०. १ बिस्वा में कपास (वस्त्र, बिछौना, ओढ़ना)
११. १ बिस्वा में तिलहन (सरसों, अलसी, तिल, सूर्यमुखी)

१२. १ बिस्वा गन्ना (गुड़-चीनी)
१३. १ बिस्वा में मूंगफली, आलू
१४. ३ बिस्वा में बाग (आम, जामुन, कटहल, आंवला, बेर, अंगूर, मोसम्मी)
१५. ५ बिस्वा में हरा चारा
१६. १० बिस्वा में अनाज (गेहूं, चावल, चना, मूंग, मसूर उड़द, मक्का)

इस तरह समायोजित भूमि की उपज से परिवार के लिए वर्ष में ५ कुन्तल अनाज, १ कुन्तल दाल, ५० किलो चना, एक हजार किलो सब्जी (२.५ लीटर प्रतिदिन) एक हजार लीटर दूध (२.५ लीटर प्रतिदिन) १०० किलो गुड़, ५० किलो खाद्य तेल मिलता है। इमारती लकड़ी, सुबबूल के साथ मेड़ों पर सागौन लगाने से जलावन की समस्या हल होती है और भविष्य के लिए साधन सुरक्षित रहता है। बाड़ से गिरे पत्तों से नडेप खाद बनती है। गोबर गैस से निकली स्लरी भी खाद रूप में प्रयुक्त होती है। गाय से मिला गोरस सात्विक भावों को पोषित करता है। आहार शुद्धि, व्यवहार शुद्धि, व्यापार शुद्धि और परस्पराचार शुद्धि की उपेक्षा नहीं की जाती। प्रवृत्ति निवृत्ति के अंकुश में रहने से सहज ही 'जीवन विज्ञान योग' सधता है। साधने में सहायक विनोबा के गीता प्रवचन की नित्य पठनीय प्रति विन्ध्य विकास भारती पंडाल में नवम्बर २००६ को रामकथा वाचक संत मुरारी बापू को भेंट की गयी तो उन्होंने सुरभि ग्रामसंकुल को भूख, भय, भीख, भूल परिमार्जन की दृष्टि से अनुकरणीय बताया।

ऋद्धि-सिद्धिदायक प्रकल्प जन शिक्षा सेवा के।
भूख, भीख, भय, भूल मुक्ति की दिशा दिखाते ये।।

संस्थान के सदस्य स्वार्थ से परार्थ और परार्थ से परमार्थ की दिशा में अग्रसर रहने का प्रयास करते हैं। उनकी लगायी गृह नक्षत्र वाटिका में एक तरफ नौ वृक्ष[1] हैं, दूसरी तरफ सत्ताइस[2], जो गोवंश के साथ नदी, पहाड़, पशु-पक्षी पर्यावरण व जीव जगत पर कुप्रभाव पड़ने से रोकते हैं - ऐसा माना जाता है। परस्पर उपकार-उपकारी भावना विकसित होने लगी है।

---

१. नवग्रह वाटिका

उत्तर

पश्चिम	कुश (केतु)	पीपल (बृहस्पति)	अपामार्ग (लटजीरा) (बुध)	पूरब
	शमी (शनि)	मदार (रवि)	गूलर (शुक्र)	
	दूब (राहू)	खैर (मंगल)	पलाश (सोम)	

दक्षिण

मुहिम

डममगपुर, रामबाग, विन्ध्य विकास भारती, गोपाल ग्राम, सुरभि ग्राम संकुल के शिक्षा सेवा प्रकल्पों में प्रत्यक्ष प्रशिक्षण प्राप्त तरुण देश में जगह-जगह अपने-अपने क्षेत्र की आवश्यकता के अनुसार काम कर रहे हैं। जीवन जन्तु कल्याण बोर्ड, ग्राम पंचायत,

---

२. ग्रह-नक्षत्र वाटिका

नक्षत्र	देवता	राशि	पौधे का नाम संस्कृत-हिन्दी
अश्विनी	अश्विनी	मेष	कारकरा-कुचिला
भरणी	यम	मेष	धात्री-आँवला
कृत्तिका	अग्नि	मेषल्वृष	उदुम्बर-गूलर
रोहिणी	ब्रह्मा	वृष	जम्बू-जामुन
मृगशिरा	सोम	वृषल्मिथुन	खादिर-खैर
आर्द्रा	रुद्र	मिथुन	कृष्ण-शीशम
पुनर्वसु	अदिति	मिथुनल्कर्क	वंश-बांस
पुष्य	बृहस्पति	कर्क	अश्वत्थ-पीपल
आश्लेषा	सूर्य	कर्क	जाग-नागकेसर
मघा	पितर	सिंह	वट-बरगद
पू.फाल्गूनी	भग	सिंह	पलाश-ठाक
उ.फाल्गूनी	अर्मया	सिंहल्कन्या	प्लष-पाकड़
हस्त	सविता	कन्या	अखिट-रीटा
चित्रा	त्वष्टा	कन्याल्तुला	विल्व-बेल
स्वाति	पायु	तुला	अर्जुन-अर्जुन
विशाखा	इंद्राग्नि	तुलाल्वृश्चिक	विकंकत-कटाई
अनुराधा	मित्र	वृश्चिक	वकुल-मौलश्री
ज्येष्ठा	इंद्र	वृश्चिक	सरल-चीड़
मूल	निर्ऋति	धनु	सर्ग-साल
पूर्वाषाढा	जल	धनु	वंगुल-जलवेतस
उत्तराषाढ़ा	विश्वदेव	धनुल्मकर	पनस-कटहल
श्रवण	विष्णु	मकर	अर्क-मदार
धनिष्ठा	वसु	मकरल्कुंभ	शमी-छयॉकर
शतभिषा	वरुण	कुंभ	कदम्ब-कदम्ब
पू.भाद्रपद	अजैकपद	कुंभल्मीन	आम-आम
उ.भाद्रपद	अर्हिबुघ्न्य	मीन	निम्ब-नीम
रेवती	पूषा	मीन	मघूक-महुआ

खादी ग्रामोद्योग, गोशाला कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण शिविर किये जाते हैं। अगल-बगल के ग्रामजनों की सभाएं कर समाज की अपेक्षा, राष्ट्र की आवश्यकता, जागतिक परिवेश और स्थानीय समस्या का समाधान करने हेतु सामुदायिक सक्रियता बढ़ायी जाती है। सिन्धोरा, सरैया, परसनपुर, पसैया में उत्कृष्ट कार्य करने वाले ग्रामजनों को पुरस्कृत कर परस्पर पोषण करने वाली जीवन शैली की उपयोगिता समझायी गयी। राजनैतिक दल, सरकारी तंत्र, स्वयंसेवी संगठन और धर्मसंघ परस्पर शोषण करने वालों को प्रश्रय देना बंद कर दें तो शोषण, सूद, दलाली, ठेका, किराये का मकड़जाल भेदा जा सकता है। आज भारत ही नहीं, एशिया, अफ्रीका, अमेरिका, यूरोप सहित विश्वभर की सरकारें जनता की प्राथमिक आवश्यकताओं की कीमत पर धरती का दोहन करने वाले व्यापार तथा मारक अस्त्रों के कारोबार को वैधता प्रदान करती हैं, जिससे आम आदमी के लिए ईमान की रोटी व इज्जत की जिन्दगी सुरक्षित रखना संभव नहीं रह गया है। प्रतिस्पर्धा पारस्परिकता को लील जाती है। असीमित स्वतंत्रता की आड़ में सारे संसार को बाजार और सभी मनुष्यों को मात्र उपभोक्ता बनाने का प्रयास हो रहा है। बढ़ती जनसंख्या के साथ बढ़ायी जारही कृत्रिम आवश्यकताएं पूरी करने के लिए सेवा, सादगी, सदाचार, शील, सहयोग, मूल्यहीन लगने लगे हैं। सामाजिक प्रथाएं, नैतिक परम्पराएं, बौद्धिक मान्यताएं, मानसिक आस्थाएं, बदले बिना धरती का संकट नहीं मिट सकता। जब तक जनसंख्या सीमित थी, हम सुरक्षित रहे, लेकिन अब बढ़ती जनसंख्या के साथ बढ़ायी जा रही कृत्रिम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये हो रही होड़ नहीं रुकी तो सर्वनाश होगा। हम सर्वनाश नहीं- सर्वोदय चाहते हैं। इसलिये करुणा केन्द्रों को क्रान्ति केन्द्र बनाने की मुहिम चलायी जा रही है। जितने-जितने ऊर्जावान जुड़ते जाएंगे, उतनी इसकी असरकारिता बढ़ेगी। विश्वास रखें- जितनी ऊर्जा भारत के पास है, उससे भारत के साथ-साथ अन्य देशों की जनता की पेटियां तो नहीं भरी जा सकतीं, पेट अवश्य भर सकता है। ऊर्जा स्रोत को अबाधित रखने का बीज मंत्र है :

एक रहें हम, नेक रहें हम सुमति दिशा निर्देश करे।
सुरभि सृष्टि की सम्यक् सेवा दुःख दैन्य संताप हरे।।



विकास की अवधारणा और हमारा कार्य

मानव समाज ने इतना विकास कर लिया है कि आज विश्व खाद्यान्न भण्डार भरा है और प्रति व्यक्ति तीन हजार कैलोरी ऊर्जा तथा 65 ग्राम प्रोटीन पा सकता है। लेकिन पाता नहीं। क्यों ? विकसित देशों के 20% लोग विश्व के 80% संसाधनों का उपयोग करते हैं एवं अविकसित व विकासमान देशों की 80% जनता के विकास के लिए मात्र 20% संसाधन ही बचते हैं। असंतुलित विकास शोषण, स्पर्धा, संघर्ष, संहार का निमित्त है। सन् 2000 में दुनिया के 209 देशों का सकल राष्ट्रीय उत्पाद 29 हजार बिलियन डालर था, उनमें 21 हजार बिलियन डालर अमेरिका, कनाडा, जापान, जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, इटली का था। शेष देशों का उत्पाद तो मात्रा 8 बिलियन डालर था।

दुनिया के 22 बड़े देश गरीबी के अभिशाप से मुक्त हैं, जबकि 28% भारतीय गरीबी की रेखा से नीचे हैं। 5 रूपये 9 पैसे प्रतिदिन की दर से पाने/कमाने वाले गरीब माने जाते हैं। उससे कम आय वालों की गणना गरीबी की रेखा से नीचे रहने वालों में होती है। अधिक की आशा में बेकारी की मार झेलने वाले 9 करोड़ भारतीय रोजगार की तलाश ही करते हैं। ऐसी दयनीय स्थिति में भारतीय समाज का विकास हो तो कैसे? विश्व के परिप्रेक्ष्य में सोचें।

विकास के नाम पर प्राकृतिक, पूँजीगत और मानवीय संसाधनों का दोहन कर अमेरिका ने 50 वर्ष पूर्व जैसा जीवन स्तर प्राप्त किया, उस स्तर तक भारतीय पहुँचना चाहें तो 'द फ्युचर ऑफ द ट्रबल्ड' के लेखक पेरिस आर्म स्ट्रांग के आकलन के अनुसार भारत को वर्तमान की अपेक्षा पेट्रोल 7 गुना, गैस 8 गुना, कोयला 9 गुना, लोहा 75 गुना, ताम्बा 100 गुना, टिन 200 गुना चाहिए, जो धरती के गर्भ में नहीं है। इतना समझ कर भी अधिक ऊर्जा, भारी पूँजी और उच्च तकनीक आधारित विकास के पीछे पड़ने से भारत पर 94,393 मिलियन डालर कर्ज है। भारत की भाँति अन्य देश भी विकास के व्यामोह में कर्जदार बन बैठे और जनता अधिक से अधिक उपभोग करने की होड़ में पड़ गयी तो उसका दुष्परिणाम समझकर वैज्ञानिक चेतावनी दे चुके हैं कि अगर यह होड़ नहीं रुकी तो विश्व की जनता को इस समय जो संसाधन प्राप्त हैं, वे भी आने वाले दशक में घटकर आधे रह जायेंगे। उसका खामियाजा सभी जीव-जन्तु, नदी-पर्वत, वृक्ष-वनस्पति, सृष्टि-स्रष्टा तक भोगने को विवश होंगे।

अनावश्यक वस्तुओं का उत्पादन एवं अमर्यादित उपभोग को प्रोत्साहन देने वाले आधुनिक विकास के हिमायतियों के लिए सारा संसार बाजार और सारे मनुष्य उपभोक्ता मात्र होते हैं। सादा जीवन, उच्च विचार, सेवा, सदाचार, शील, सहयोग, सृजन उनका प्रेरक तत्व नहीं रहता। आज के वैश्वीकरण के दौर में विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ पूँजी, प्रौद्योगिकी और तकनीकी सहायता कर धीरे-धीरे हर गाँव, क्षेत्र या राष्ट्र को अपना आर्थिक उपनिवेश बना लेते हैं। फिर किसी स्तर पर विकास की स्वतंत्र नीति पर अमल करने की अनुकूलता नहीं रह जाती और न प्रदूषण, प्रतिस्पर्धा, विकास या मास प्रोडक्शन ही रोका जा सकता है। उन्नत बीज और केमिकल खाद के नाम पर किसानों के परम्परागत कौशल को छीना और धरती की उर्वरा शक्ति घटायी। इण्टरनेशनल फेडरेशन ऑफ आर्गेनिक एग्रीकल्चरल मूवमेन्ट्स (IFOAM) के अनुसार रासायनिकों से विभिन्न देशों की 1 करोड़ 90 लाख हेक्टेयर भूमि की उर्वरा शक्ति घटी तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के कृषि खाद्य संगठन के अनुसार लगभग 50 हजार किस्म की फसलें एवं 4 हजार किस्म की मवेशी नस्लें समाप्त हुईं। भारत में भी तितलियों, पंतगों, कीड़ों-मकोड़ों, सरीसृपों, पक्षियों, आदि की कई प्रजातियां विनष्ट हुईं। मांस उत्पादन व निर्यात को प्रश्रय मिलने से अब गोवंश भी विनष्ट हो रहा है। विकसित देशों में प्रति 100 मनुष्यों के पीछे 268 पशु हैं, लेकिन भारत में तो 38 ही रह गये हैं। गैर पारम्परिक ऊर्जा मन्त्रालय, भारत के मुताबिक इतने पशु भी 60 अरब रूपये का दूध, 50 अरब रूपये का परिवहन, 30 अरब रूपये की जैविक खाद, 50 करोड़ रूपये की गैस सुलभ कराते हैं। वैज्ञानिक मतानुसार गोबर रेडियोधर्मिता सोखता है। आधा टन वजन की गाय रात-दिन में 12 सौ वाट गर्मी देती हैं। 24 बैलों से 24 घण्टों में पाँच हार्स पावर विद्युत पैदा की जा सकती है। यह सब जान-समझ कर महात्मा गाँधी ने आर्थिक दृष्टि से गाँव को विश्व और सांस्कृतिक दृष्टि से विश्व को गाँव मानकर स्वावलम्बन साधने और स्थायी विकास करने पर बल दिया था। हरमन डेली, अमर्त्यसेन जैसे अर्थशास्त्रियों ने भी मुक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के बजाय लोकल मार्केट और लोकल प्रोडक्शन को प्राथमिकता देने के लिए वकालत की थी। मास प्रोडक्शन (अधिक उत्पादन) की जगह प्रोडक्शन बाई द मासेस (अधिक लोगों द्वारा अधिक उत्पादन) की नीति पर अमल करने से ही छोटी-छोटी इकाइयां अपनी बुनियादी जरूरतें पूरी कर लेंगी। गांधी जी चाहते थे कि जो चीजें गाँवों में बन सकती हैं, वे शहरों में न बनने दी जाँय। शहर उन्हीं चीजों का उत्पादन करें, जो विदेश से आती हैं। सबसे ज्यादा कोशिश गाँव को स्वावलम्बी और स्वयंपूर्ण बनाने की हो। गाँव वाले अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए आजकल के यंत्रों औजारों (कम्प्यूटर सहित) से भी काम ले सकते हैं, शर्त सिर्फ यही रहे कि दूसरों को लूटने के लिए उनका उपयोग

न हो। अनाज, साग-सब्जी फलोत्पादन से जमीन बचे तो नगदी आमदनी के लिए उपयोगी खेती की जा सकती है, लेकिन गांजा, तम्बाकू, अफीम, वगैरह की खेती से बचें। पानी का पूरा इन्तजाम रहे। कुँओं तालाबों पर गाँव का ही नियंत्रण हो। आवास निर्माण में जिस सामान का उपयोग हो, वह भी गाँव के आसपास पांच मील की सीमा का रहे। थोड़े में ऐसी कोई चीज न हो, जो गाँव में न मिले। गुणवत्ता के साथ विनिमय व विपणोन्मुखी कार्य योजना पर अमल करते समय विज्ञानवृत्ति व स्वावलम्बन केन्द्र में रहने से जनसाधारण लाभान्वित हो सकता है।

सुरभि शोध संस्थान, प्रशासनिक सुधार एवं विकेन्द्रीकरण आयोग, जगजगत सेवा संस्थान ने वर्ष 1998 के आरम्भ में एक दस दिवसीय कार्यशाला वाराणसी स्थित मधुवन-गोशाला परिसर में आयोजित की, जिसमें आचार्यकुल, कृषि गो-सेवा संघ, रचनात्मक समाज सहित देश-विदेश के 872 प्रतिनिधि शामिल हुए। उन्हें गोरक्षा मूलक, स्थानीय उद्योग प्रधान लोक शिक्षण के प्रयोग व परिणाम दिखाये गये, जिससे निम्न बातें स्पष्ट हुईं :

1. कृषि गो विज्ञान अनुसंधान के क्षेत्र में विकास की असीम संभावना है। उसके तहत् अगले पांच वर्षों में वर्तमान की अपेक्षा दूध दुगुना, चारा तीन गुना, दाना सातगुना, रोजगार के अवसर आठ गुना बढ़ सकते हैं। लगभग 35 करोड़ भारतीयों को गरीबी की रेखा से उबारने और संयुक्त राष्ट्रसंघ के विकास विभाग की सूचना के मुताबिक प्रतिदिन गरीबों की जमात में शामिल होने वाले 68 हजार लोगों को काम देने की इससे दिशा खुलती है।
2. गोबर, मिट्टी, खरपतवार, कूड़े से बनी सेन्द्रिय खाद जिन खेतों में डाली, उनकी उर्वरा शक्ति बढ़ी और खेती में पानी कम लगा। गाय के गोबर में 120 करोड़ जीवाणु पाये जाते हैं। उनमें से पांच सौ ऐसे जीवाणु हैं, जिनमें नगरीय कचरे के रोगाणु समाप्त हो सकते हैं और कचरे का उपयोग जैविक खाद बनाने में हो सकता है। जैविक खाद पोषित अनाज, सब्जी, फल आदि में कीटनाशकों का विष नहीं होता। उनसे शरीर नीरोग रहता है। किडनी, कैंसर, ब्लडप्रेशर, हृदयरोग, मधुमेह के रोगियों को गोमूत्र अर्क, गोमूत्र-बटी, गोमूत्र मलहम से फायदा होता है। यही सब देखने वालों को लगा कि ऐसे बहुआयामी प्रकल्प खड़े हों तो देश के 7 करोड़ 40 लाख किसान एवं 4 करोड़ 5 लाख खेतिहर मजदूर पशुपालन एवं ग्रामीण उद्योगों में पुनर्स्थापित किये जा सकते हैं।
3. काशी गोशाला में प्रति 16 गाय के पीछे एक व्यक्ति रोजगार पाया। गोरस भंडार से दूध, दही, मट्ठा, मक्खन, घी आदि उत्पादों के प्रबंधन, विपणन से स्वरोजगार

चाहने वाले तरुण प्रशिक्षित होकर काम में लगे। गोशाला प्रबंधकों के ध्यान में आया कि अनुपयोगी गोवंश उपयोगी और उपयोगी गोवंश संवर्धित करने हेतु मुम्बई नगर महापालिका द्वारा संचालित देवनार कत्लखाने में कटने वाला प्रतिवर्ष 180 करोड़ रूपये मूल्य का पशुधन बचा लिया जाय तो उससे 3 लाख 70 हजार टन अनाज, 10 लाख टन चारा, 30 लाख टन खाद, 20 करोड़ 58 लाख 56 हजार टन दूध और 1 लाख 80 हजार लोगों को रोजगार मिल सकता है। आधुनिकतम कत्लखानों में प्रतिदिन कट रहे 29500 गोवंश बचाने पर ध्यान केन्द्रित किया जाय तो और भी कितने ही लोग रोजी-रोटी पाजायें।

4. कृषि गोपालन से संबद्ध उद्योग है: धान से चावल, चूड़ा, मुरमुरा, दलहन से दाल, तिलहन से तेल, ऊन-कोया से वस्त्र, मृतचर्म से चप्पल-जूता बनाना, अनाज, दाल, फल प्रशोधन, जड़ी-बूटी फल संरक्षण, हल-फाल, गैंता-कुदाल, बाल्टी-चौखट, किवाड़ बैलचालित कृषि यन्त्र, जेनरेटर, तेलघानी, सुधरी बैलगाड़ी निर्माण, नर्सरी-पौध विकास, मधुमक्खी पालन आदि। पंचायत, विकास खण्ड, ऊर्जा विकास सहायक, खादी ग्रामोद्योग प्रभारी सहायक हों तो बड़े उद्योगों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों से मिल रही चुनौती स्वीकार कर स्थानीय संसाधनों को संशोधित करते हुए 20 करोड़ ग्रामवासी छोटी-छोटी इकाइयों में उत्पादन कर आर्थिक नियोजन में जनता की सहभागिता बढ़ा सकते हैं। परंपरागतकला-कुशलता का उपयोग होगा और वे संसाधन ही काम आयेंगे, जो प्रकृति हमें बार-बार देती हैं।

5. चाय की जगह दूध, लस्सी, मट्ठा, ठण्डे की जगह गन्ने या फलों का रस, बेल के शर्बत को वरीयता दी गयी, तो प्राकृतिक उत्पाद को बाजार मिला और रुचि भी बदली। आकाशवाणी, दूरदर्शन, अखबारों में प्रकाशित विज्ञापन से प्रभावित होकर आधुनिक कहलाने वाले लोग प्रतिदिन छः सौ करोड़ रूपये टूथपेस्ट, शैम्पू, सौन्दर्य प्रसाधन, रेडिमेड फूड, चाकलेट, चिप्स, मादक पदार्थ जैसे अप्राकृतिक उत्पादों में खर्च करते हैं, उनकी रुचि बदल जाय तो गाँव-गाँव में 'विदेशी ठण्डा और देशी अण्डा' की जगह देशी उत्पाद और बढ़िया स्वाद वाले पदार्थ गांव की लक्ष्मी गाँव में ही रोक देंगे। गाँवों से हो रहा पलायन रुकने से ग्राम सरस्वती व ग्राम दुर्गा 'ग्रामवासिनी भारतमाता' को स्वतः सबल बना लेगी, स्वदेशी आन्दोलन की रचनाधार्मिता उजागर होगी।

6. 'अर्निंग एण्ड लर्निंग थ्रू डूइंग' के अनुरूप बालक-बालिकाओं को प्रशिक्षण दिया गया। इसी तरह निरक्षर महिलाओं और अकुशल कारीगरों को निर्धारित कामों के साथ प्रशिक्षित किया। प्रतिदिन एक घण्टा प्रशिक्षण पाने वालों ने दूसरे

तीसरे सप्ताह से प्रति घंटा दो रूपये से लेकर 6 रूपये अर्जित करना सीखा। अकुशल से अर्धकुशल और अर्धकुशल से कुशल बने प्रशिक्षणार्थी स्वयं सेवी संस्थाओं में जिम्मेवारी के साथ काम करने लगे। कुछ ने स्वरोजगार खड़े किये। गुणवत्ता, प्रामाणिकता और पारस्परिकता से उनका रोजगार फला-फूला। पंजीकृत या अपंजीकृत संस्थान इस कार्य योजना पर अमल करें, तो करोड़ों श्रम दिवसों का सृजन हो जाय और करोड़ों लोगों को कंगाल बनाने वाले चन्द करोड़पति कुशलता का शोषण न कर सकें। परस्पर पोषण करने का प्रशिक्षण प्रभावी हो, तब व्यसन, अपराध, आतंक, प्रदूषण घटता है और स्वार्थ परार्थ व परामार्थ की दिशा में उन्मुख होता है।

7. परमार्थपरायण लोगों ने मिर्जापुर जनपद के अन्तर्गत विन्ध्यपर्वत की तलहटी में 'सुरभि ग्राम' बसाकर उजड़े जंगल, सूखे जल स्रोत, श्रीहीन वनांचल का कायाकल्प किया। पहाड़ी नाला-बांधकर जल रोका। पथरीली भूमि का समतलीकरण कर जैविक खाद डाली। गायें पालीं। गोबर गैस संयंत्रा लगाये। नाना प्रकार की सब्जियां फल प्रजातियां, अनाज, औषधियां पैदा कीं। जीवनोपयोगी उपज पैदा करने के साथ नकदी फसलों के पीछे भागने वाली मानसिकता त्यागने से सात्त्विक परिवेश बना। परस्पर परिपूरकता की भावना को बलमिला। नजरे बदलते ही नजारा भी बदलने लगा।

जीव वैज्ञानिकों के मतानुसार धरती की संसाधन उत्पादन क्षमता 150 अरब टन थी। उसमें से 12% नष्ट हो गयी। 28% मानव उपयोग में आ रही हैं। 60% जीवधारियों के लिए थी। विकासशील देशों द्वारा उसका दोहन होने से धरती-संकट बढ़ा। अतः संकट मुक्ति के लिए पशु ऊर्जा, जल ऊर्जा, पवन ऊर्जा, सौर ऊर्जा व मानव ऊर्जा का सम्यक् उपयोग कर सहजीवन को निरापद बनाना और सामुदायिक विकास की संगति बिठाना है। गो-उपासना केन्द्रित जीवन-पद्धति, गोचर केन्द्रित कृषि और गो विज्ञान केन्द्रित उद्योगों से ही गो-संस्कृति फल-फूल सकती है।

कार्यानुभव हुआ कि गो-संस्कृति खेती, ग्रामोद्योग और गोपालन से जुड़ी जीवन व्यवस्था है। यह भारत की प्राचीन कृषि व्यवस्था में लौटाने की कोशिश नहीं है, अपितु उससे आगे-बहुत आगे बढ़कर गो-संस्कृति आधुनिक विज्ञान की अत्याधुनिक स्थापनाओं और शोधों के आधारभूत तथ्यों पर टिकी हुई है।

परिवार के लिए वर्ष में ५ कुन्तल चावल, १ कुन्तल दाल, ५० किलो चना, ५० किलो खाद्य तेल, एक हजार लीटर दुग्ध (२.५ लीटर प्रतिदिन) १ हजार किलो सब्जी (२.५ किलो प्रतिदिन) एक हजार किला फल, २५ किलो मसाला, १०० किलो गुड़/

चीनी, २०० मीटर कपड़ा आवश्यक माना है, जिसकी पूर्ति एक एकड़ के विवेक पूर्वक उत्पादन से करने का सफल प्रयोग हुआ।

(क) रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कुछ अंशों तक उपयोगी होता है, किन्तु इसका अधिक उपयोग खेत की मिट्टी की बनावट पर बुरा असर डालता है और लम्बे समय तक इसका उपयोग खेत को बंजर बनाता है।

(ख) आधुनिक कृषि प्रणाली में रासायनिक कीटनाशकों की भी यही भूमिका है। अनाज, फल और सब्जी उत्पादन में उनका थोड़ा लाभ तो है, पर लगातार इनका प्रयोग स्थानीय पर्यावरण यानी मिट्टी, पानी और हवा को जहरीला बनाता है। यह प्रक्रिया घूम फिर कर पास-पड़ोस के सभी प्राणियों-मनुष्य, पालतू पशु, कीट-पतंग और खेत की मिट्टी के जीवाणुओं पर प्राणलेवा असर डालती है।

(ग) पारंपरिक यानी प्राचीन कृषि शैली में गाय के गोबर का उपयोग ईंधन के उपले बनाने या खेती के लिए खाद तैयार करने में होता था। आज हम गोबर गैस प्लांट, जैविक कम्पोस्ट खाद, बैटरी उत्प्रेरक और केंचुआ खाद के लिए गोबर का बहुविध उपयोग कर रहे हैं।

(घ) गोमूत्र का पहले नाम मात्र का उपयोग हो पाता था। कभी कहीं औषधि या चिकित्सा के लिए गो-मूत्र काम आता था, लेकिन इन दिनों गोमूत्र एक बहुत लाभकारी पदार्थ मान लिया गया है।

(ङ) रोजगार के अवसर देने की दृष्टि से गोपालन सबसे अच्छा साधन है। दूध, दही, मक्खन, घी, खोआ, संदेश, पनीर, मट्ठा, रबड़ी, बरफी, रसगुल्ला आदि पदार्थ दूध से ही बनते हैं।

(च) बैल खेत जोतने व माल ढोने के लिए उपयोगी होते हैं। डीजल और पेट्रोल की बढ़ती कीमतों के कारण ट्रैक्टरों से की जाने वाली जोताई दिनों महंगी होती जा रही है। इसके कारण खेती का लागत खर्च इतना बढ़ गया है कि किसान फिर हल-बैल से खेती करने लगे हैं। जैविक कृषि एवं जैविक उत्पादों की महत्ता बढ़ी है।

(छ) उत्तर प्रदेश में 32 लाख 62 हजार 642 मी. टन यूरिया, 4 लाख 98 हजार 152 मी. टन फास्फेट और 161 मी. टन सल्फेट की खपत है। फास्फेट पोटास भी 101 मी. टन से अधिक चाहिए। गाय के गोबर से इन सबकी पूर्ति हो— ग्राम पंचायतों को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

१. सरकार कानून बना सकती है, करुणा के भाव नहीं जमा सकती जो गोसंस्कृति का मूलाधार है। 'गावो न पशवः' गाय पशु नहीं, गोमाता है।

२. गो-दुग्ध इतना पोषक और स्वास्थदायी पदार्थ है कि केवल दूध और कुछ साग-सब्जी के बल पर जीवित रहा जा सकता है।

३. गो-दुग्ध में बूढ़े शरीर की काया को नया कल्प प्रदान करने की विलक्षण क्षमता है। प्राचीन युग में इसके कुछ प्रयास हुए थे। महामना मदनमोहन मालवीय ने कायाकल्प के लिए इस उपाय का सहारा लिया था।

४. चिकित्सा की दृष्टि से कई मनीषी एवं प्रयोगधर्मी व्यक्ति गोमूत्र पर शोध कर रहे हैं। गोमूत्र अपने आप में एक अनूठी संपदा है। इसके भी अनेक प्रयोग जारी हैं। राजवैद्य रेवाशंकर जी ने गोमूत्र के रासायनिक तत्त्वों के नाम और रोगों पर उन तत्त्वों के प्रभाव का विशद विश्लेषण प्रस्तुत किया है– जो **'गोमूत्र महोषधि'** पुस्तक में पढ़ा जा सकता है।

५. पूर्वप्रधानमंत्री के कथनानुसार पशु हमारे बिजलीघरों से अधिक ऊर्जा प्रदान करते हैं। उनकी कतल से हमें २०० से ३०० अरब रुपये अतिरिक्त बिजली पैदा करने पर खर्च करने होंगे। इसके अलावा किसानों को सस्ती खाद व इंधन की भी हानि होगी।

६. आज चारों ओर क्रूरता, अन्याय, अत्याचार, विध्वंसकारी व घात-प्रतिघात का दौर चल रहा है। यह एक भयानक चुनौती है। केवल पुलिस बल, कानूनी प्रावधान अथवा कड़ी सजा का भय वर्तमान परिस्थिति में बदलाव लाने के लिए अधूरा सिद्ध हो रहा है। हिंसा, कुव्यवस्था और अन्याय का मूल बिन्दु मानव की भीतरी चेतना है। वह चेतना कैसे विकसित अथवा विकृत होती है और वह किस प्रकार सुव्यवस्था अथवा कुव्यवस्था का निर्माण करती है, यह समाशास्त्र का मुद्दा है। समाजशास्त्री की दृष्टि से बाजार संस्कृति और मानवीय संस्कृति दो ध्रुव हैं। इनका द्वंद्व ही वर्तमान संकट का मूल कारण है। इसका निवारण गो सेवा केन्द्रित जीवन शैली से हो सकता है, क्योंकि यह जीवन शैली मारक नहीं, तारक है, उपकारक है।



सस्ता, निरापद और शुद्ध आहार

जीवन के अस्तित्त्व और यापन के लिए आहार अनिवार्य है। आहार कैसा हो– इस पर भारतीय मनीषियों ने चिन्तन किया और बताया है– हित भुक् (पथ्यकारी), मित भुक् (परिमित), ऋतभुक् (ईमानदारी से मेहनत कर उपार्जित) और शाकभुक् (फलाहार) होना चाहिए। कुपोषण मिटाने और निरोग रहने हेतु किसी ने शरीर को खिला-खिला कर और किसी ने खाना छोड़ (तप कर) आहार के प्रति आदर भाव दिखाने में कमी की, जिससे न मन पवित्र रहा, न तन स्वस्थ। सस्ता, निरापद और शुद्ध आहार ही शरीर को स्वस्थ रखता है।

मनुष्य एक सर्वभक्षी प्राणी है। इसका आहार दो भागों में विभाजित है– १. शाकाहार (केवल पेड़-पौधों से प्राप्त भोजन), २. मांसाहार (मछली, मुर्गा, मांस आदि से बना)। आहार का मन-मस्तिष्क, आचार-विचार, बात-बर्तन, कार्य-कलाप पर प्रभाव परिलक्षित होता है। मन शरीर में कहीं अलग नहीं रहता। वह तो शरीर के जीवित पदार्थों की प्रक्रियाओं का योग मात्र है। हम जैसा खाते हैं, वैसा ही होते हैं और जैसा होते हैं, वैसा ही खाते-पीते हैं। खान-पान ही हमारा जीवन दर्शन निर्मित करता है। भारतीय संस्कृति में शाकाहार का जयगान करने की जितनी चर्चा है, वह विश्व-विदित है। फिर भी देखना चाहिए कि शाकाहारी जीवन पद्धति के प्रमुख लाभ क्या-क्या हैं?

१. प्राणि-शास्त्र ने प्रयोग-प्रत्यक्ष और प्रमाण-पुष्ट तथ्य को बारबार दुहराया है कि वनस्पति पदार्थों को मांस में परिवर्तित करने में ऊर्जा का बड़ी वृहत् मात्रा में अपव्यय होता है। एक एकड़ भूमि की औसत पैदावार से एक हजार लोग दो वक्त भोजन कर सकते हैं। यदि इसे मांस में बदलकर खिलायें तो केवल एक सौ सैंतीस व्यक्ति ही खा सकेंगे। इस प्रकार ९५.७% की हानि उठानी पड़ती है। मांस-अंडा आदि के उत्पादन के लिए वनस्पति जगत् के बहुत बड़े भाग की बलि देनी होती है। अतः मानव समाज का उत्तरदायित्व है कि अपनी आबादी में प्रतिवर्ष तीन करोड़ की वृद्धि के लिए अधिक उत्पादन तो करे ही, अपने उत्पादन को बचाये भी रखे। कितने दुःख की बात है कि हमारी मांसाहारी प्रवृत्ति केवल जानवरों का मांस खाने के लिए संसार के उत्पादन का आधा अनाज जानवरों को खिला देती है और बाद में उनका मांस खाती है। विकसित देशों में मांस की खूब खपत है। प्रति व्यक्ति ४० किलो मांस खाने की लोलुपता के चलते

अविकसित या विकासशील देशों के करोड़ों लोगों को भूखों मरना पड़ता है। विश्व-व्यापी मांस-महंगाई के कारण मानव विवश होकर शाकाहार की ओर लौट रहा है।

२. हमारा दर्शन, धर्म और नीतिशास्त्र आत्मैक्य का पक्षधर है। भारत तो भारत, अमेरिका जैसे सर्वाधिक मांस की खपत वाले महाद्वीप के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने यह देखकर कि उनके राष्ट्र में मानवाधिकार की कितनी अवहेलना होती है, कहा था– "मैं मानव अधिकार का ही नहीं, पशु अधिकार का भी पक्षधर हूँ।"

समस्त प्राणि जगत् के प्रति अपनी स्नेहपूर्ण सहानुभूति, मैत्रीपूर्ण सहायता, हार्दिक सहृदयता प्रदर्शित करने में ही मानवता का गौरव है। 'जीओ और जीने दो' का नारा पुराना पड़ गया। आज का नारा है– 'निर्बलों, निराश्रितों और असुरक्षित जीवों को जिलाने के लिए जीओ।' भारत ने सदियों पूर्व सात्त्विक, राजसिक, तामसिक आहार की विवेचना की और **'सर्वभूतहिते रताः', 'अद्वेष्टा सर्वभूतानां', 'निर्वैरः सर्व भूतेषु'** की आचार-संहिता दी। सन्त कबीर ने इसे जन साधारण की समझ में आने लायक शब्दों में कहा–

डाली तोडूं न पाती तोडूं, ना कोई जीव सताऊं।
पात-पात में प्रभु बसत है, वाहि को शीश नवाऊं।।

ईशावास्योपनिषद कहता है–

यस्तु सर्वाणि भूतानि भूतान्यात्मन्येवानु पश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।

जो मनुष्य प्राणिमात्र में परमात्मा को देखता है और सर्वव्यापी परमात्मा को प्राणिमात्र में देखता है, वह किसी के प्रति क्रूर कैसे हो सकता है? वह तो तीर्थंकर महावीर के शब्दों में **'मित्ति मे सव्व भूएसु'** प्राणि जगत् का मित्र ही हो सकता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने और स्पष्ट किया है–

जे न मित्र दुख हो हि दुखारी।
तिन्हहि विलोकत पातक भारी।।

जीव मात्र हमारा मित्र है, बन्धु है, आत्मीय है। जैसे हमें वेदना होती है, वैसे ही पेड़-पौधों को भी होती है। सन् १९१७ में वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु ने केथोग्राफ से सिद्ध कर दिखाया कि वृक्षों में जीव सदृश इन्द्रियाँ हैं, लेकिन जैन-मनीषियों ने हजारों वर्षों पूर्व अहिंसा विज्ञान के सहारे पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति में भी जीवन का दर्शन किया और जीव-मात्र के प्रति संयम रखने का बोध दिया। कितनी लज्जा की बात है कि इतनी जानकारी होने के बावजूद हम भारतवासी विदेशों का अनुकरण कर मदिरा-मांस के आदी होते जा रहे हैं।

३. शरीर-रचना पर गौर करें। हमारे दाँतों की बनावट मांसाहारी जीवों जैसी नहीं है। फलाहारी जीवों जैसी हमारी त्वचा स्वेदन हेतु रन्ध्रमय है। कुत्ता, बिल्ली, शेर आदि को पसीना नहीं आता। हमें पसीना आता है। मांसाहारियों के मूत्र में तीव्र अम्ल होता है, जबकि मनुष्य के मूत्र में शाकाहारियों सा क्षार होता है। मांसाहारी जीवों की आंत छोटी होती है, परन्तु शाकाहारी जीवों के समान मनुष्य की आंत लम्बी होती है। मांसाहारी जीव पानी तथा द्रव पीते नहीं, चाटते हैं, जबकि शाकाहारी होठों से पीते हैं। प्रकृति ने मनुष्य की रचना शाकाहारी के रूप में की, किन्तु प्रकृति द्रोह कर मनुष्य मांस भक्षण करने लगा; फिर भी मांसाहारी जानवरों की तरह वह न कच्चा मांस खा सकता है, न ही पचा सकता है। जानवरों को मारने के लिए भी उसे कसाई जैसा बिचौलिया रखना पड़ता है और उसके द्वारा मांस सुलभ कर लेने के बावजूद वह उससे घृणा करता है। कच्चा मांस सेंक-पकाकर– कीमा, कबाब, मुर्ग–मुसल्लम, चिकेन कढ़ी आदि नामों से स्वाद पूर्वक खाने वाले नहीं जानते कि प्रकृति द्रोही होकर वे शरीर–विज्ञान का दुरुपयोग करने के कितने गंभीर अपराधी हैं।

४. चिकित्सा-विज्ञान में शाकाहार का विशेष स्थान है। चिकित्सक मानते हैं कि मधुमेह का रोग मांसाहारियों को अधिक होता है। मांस में विटामिन और खनिज लवण भी नहीं होते। मांसाहारी के शरीर में अनेक प्रकार के विष का भी प्रवेश होता रहता है। थकान विष (फेटीन टॉक्सिन) मुर्दा विष (टोमेन) आदि के चलते अनेक बिमारियों को प्रश्रय मिलता है। फोर ट्राइब जाति के आदिवासी नर मांस भक्षण किया करते थे। उनमें 'कुरु' रोग बहुतायत से होता था। डा. कार्लटन ने शोध कर बताया कि नर–मांस के कारण उनके मस्तिष्क और स्नायु बुरी तरह प्रभावित हो जाते थे। अतः समझा–बुझाकर उनकी वह आदत बदली गयी। मरे का मांस तो अनिष्टकर होगा ही, चाहे मनुष्य का ही क्यों न हो।

स्वाभाविक मृत्यु से मरे या कसाई द्वारा मारे गये पशुओं में स्वतः **'वैषेले हारमोन'** पैदा हो जाते हैं। मांसाहारी मनुष्य उनसे आक्रान्त होते हैं और बीमार पड़ते हैं। उनमें भी बच्चों के बीमार पड़ने की संभावना अधिक रहती है। क्योंकि वे विष–संचरण और रोग–संक्रमण के लिए वयस्कों की अपेक्षा कम प्रतिरोधी शक्ति रखते हैं। रोगों से बचने/बचाने की दृष्टि से अनेक राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय संगठन प्रबोधन प्रशिक्षण का काम करते हैं। वे बताते रहते हैं कि यथासम्भव मृत जीव–जन्य पदार्थ आदि का सेवन न करें। फिर भी फरेबी इन्सान ने जगह–जगह कतलखाने खोल रखे हैं। कुक्कुट गृहों की बाढ़–सी आ गयी है। 'सण्डे हो या मण्डे रोज खाइये अण्डे' के विज्ञापनों से खाने की ललक पैदा की जा रही है, जो संवेदनशीलता, परोपकारिता और पोषकाहार के प्रति खुल्लमखुल्ला धोखा

है। इसलिए अब ऐसे संगठन खड़े हो रहे हैं, जो मांस तथा उससे संबद्ध उत्पादों का विकल्प सुझाते हैं। भारत की शाकाहारी कांग्रेस, अन्तर्राष्ट्रीय शाकाहारी संघ आदि उल्लेखनीय काम कर रहे हैं और बता रहे हैं कि मांस के बराबर या उससे अधिक पौष्टिक पदार्थ कौन-कौन से हैं और उन्हें कैसे प्राप्त करना है। 'करुणा क्लबों की स्थापना' भारतीय शाकाहारी कांग्रेस का ही कारगर कदम है।

जापान में प्रतिवर्ष ३०० बड़ी व्हेल मछलियाँ मारी जाती हैं। मारने वाले कहते हैं कि यह कार्य शोध के लिए है, क्योंकि कानूनन बाजार में बड़े जानवरों का मांस बेचना वर्जित है। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन भी व्हेल शिकार के विरुद्ध हैं। कतिपय शोध संस्थान सिंथेटिक उत्पादों में व्यस्त हैं। उनके अनुसन्धान से स्पष्ट है कि रोग-विष का ९०% भाग मांस-उत्पाद या उप-उत्पादों से आता है, जो प्रतिरक्षण क्षमता नष्ट करता रहता है। इसका प्रभाव शिक्षार्थियों की सीखने की क्षमता और स्मरण धारिता पर भी पड़ता है। सूअर पालन और सूअर मांस से होने वाली बिमारियों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया जा रहा है। समुद्रों के किनारे पड़े अंडों से होने वाले रोगों की जानकारी भी अब सभी को करायी जा रही है। समुद्री उत्पादों के प्रयोग और व्यवसाय से संबद्ध समुद्र तटीय प्रदेशों- आन्ध्र, तमिलनाडु आदि में अनेक संस्थाएँ कल्याण कार्य कर रही हैं। हाल के वर्षों में भारत से समुद्री जन्तुओं, अंडों, झींगों, सीपों, घोंघों आदि का निर्यात बढ़ा है। इससे समुद्र किनारे मछली पालन-व्यवसाय एवं कृषि बुरी तरह प्रभावित है। निर्यात से प्राप्त आमद से कहीं अधिक हानि हो रही है। सोने के अंडे देने वाले हंस भी नित्य मारे या निर्यात किये जा रहे हैं। भारत के मांसाहारियों की तृप्ति बड़ी महंगी पड़ रही है। विदेशी-मुद्रा के लालच में वह दिखायी नहीं देती या देखकर भी अनदेखी करने की आदत हो गयी है। 'मुंदहूं आँख कतहु कछु नांही'।

भारत में सूअर फार्म खुल गये हैं। सरकार उनके लिए दिल खोलकर मदद दे रही है। कौन समझाये कि सूअर के मांस से स्फीत कृमि पेट में आ जाते हैं, जिनका निष्कासन या निवारण एक बड़ी समस्या है। सूअर-मांस से रक्त में कालेस्टराल की मात्रा भी बहुत बढ़ जाती है और साथ-साथ हृदयरोग की संभावना। इससे शरीर में मोटापा भी आता है। आलस्य और कार्य के प्रति अरुचि इसके सबसे बड़े लक्षण हैं। आज अनेक ऐसे वनस्पति-पदार्थों का उत्पादन हो रहा है, जो सूअर-मांस के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं। उनमें उपर्युक्त दोष भी नहीं होते।

वाराणसी में कतल के लिए जाने वाले गोवंश को रोकने का हमने सफल अभियान चलाया। पिछले दशकों में करीब साठ हजार से अधिक गाय-बैल बचे। समुचित चिकित्सा, संतुलित दाना-पानी, अच्छी देखभाल से वे उपयोगी बने और उनके सहारे गोरस भंडार,

ग्रामोद्योग केन्द्र, गोपाल ग्राम जैसे समग्र विकास के प्रकल्प खड़े हुए। जय जगत सेवा संस्थान, आचार्यकुल, सुरभि शोध संस्थान, काशी गोशाला सहित कई संस्थाएँ बम्बई, कलकत्ता के कतलखानों पर सत्याग्रह के लिए स्वयं सेवक भेजने में मदद करती हैं, गोमांस तथा उसके उत्पादों का निर्माण रोकती हैं और सजीव (पशु-पक्षी, पेड़-पौधों और मानव) हिताय कल्याण कार्यों को बढ़ावा देती हैं।

५. मांस को प्रथम श्रेणी का प्रोटीन मानने वाले संभवतः जानते नहीं कि उसमें प्रोटीन तो १८ से २०% ही होता है, ६०% पानी रहता है। मूंगफली, मसूरदाल, राजमा, चना, हरा मटर, सोयाबीन में इससे कहीं अधिक सस्ते निरापद और शुद्ध प्रोटीन होते हैं। निरामिष भोजन और गाय की पूजा का आदर्श भारत ने विश्व के समक्ष रखा है। आज भी करोड़ों भारतीय निरामिष भोजी हैं, जो ऐतिहासिक उपलब्धि है। **'आहार शुद्धो सत्त्व सिद्धिः'** आहार-शुद्धि से जीवन-सिद्धि की मंजिल तक पहुँचने की अवधारणा भारतीयों की विशेष देन है। भारतीयों की भाँति बर्नाड शा तथा अन्य जीवदया प्रेमियों ने एक सुनहरे भविष्य की कल्पना की है, जिसमें मनुष्य सारी हिंसा भूलकर हर प्राणी के साथ आत्मीयता, दयालुता और सहृदयता का संबन्ध रखेगा। काश, उनके स्वप्न को साकार करने में मानव समाज जुट जाय। काश, हमारी जीव कल्याण संस्थाएँ इस सर्वभक्षी मानव को भोजन के चुनाव, पोषक द्रव्यों की पहचान, स्वास्थ्य विधियों का ज्ञान और शाकाहार के अनेकानेक लाभ बताने के लिए जन प्रबोधन अभियान चलाने को तत्पर हो पातीं। यह धार्मिक, नैतिक के साथ-साथ शुद्ध और पवित्र मानवोचित कार्य है, जो पर्यावरण-संतुलन एवं धरती रक्षा के लिए अनिवार्य है।

●

साधना को सामाजिक मूल्य बनाने की मुहिम

आचार्य विनोबा भावे क्रान्तिकारी सन्त थे। स्वतंत्र भारत के नवनिर्माण में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। कत्ल और कानून के सहारे जो समाज रचना बदलने का स्वप्न देखते हैं, उन्हें करुणा के माध्यम से समाज रचना करना विनोबाजी ने सिखाया। सारे धर्मों और विभिन्न तत्त्व विचारों के पुष्पों का गुलदस्ता बनाने वाली उनकी कला अनुकरणीय बनी। सरकार ने स्कूल-कालेज खोले तो विनोबाजी ज्ञान की लगन पैदा करते रहे। स्वयं सेवी संगठनों ने जरूरत मंदों को रोटी, कपड़ा, आवास आदि देकर राहत पहुँचायी तो विनोबा जी उन्हें उत्पादन के साधन लेकर श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर जीवन जीने के अवसर सुलभ कराते रहे। रेडक्रास सोसाइटी जैसी संस्थाएँ युद्ध पीड़ितों की सेवा करती रही तो विनोबाजी युद्ध का विरोध कर भूदान मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति की अलख जगाने में जुटे रहे। उनके कार्यों से भूमिहीनों को भूमि मिली, साधनहीनों को साधन मिले और स्वतंत्र राष्ट्र के तिरंगे ध्वज के समान हर भारतीय के लिए ज्ञान-कर्म-भक्ति समन्वित तालीम तथा योग-उद्योग-सहयोग प्रधान पाठ्यक्रम मिला है। इसलिए विनोबा-दर्शन जितना पढ़ें, उससे दुगुना चिन्तन करें एवं उससे भी चार गुना अमल कर जन-जीवन की दशा व दिशा बदलें।

विनोबाजी का जन्म ११ सितम्बर १८९५ को गागोदा (महाराष्ट्र) में हुआ। १९१६ में म.गांधी के पास पहुँचकर उन्होंने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के साथ शरीरश्रम, अस्वाद, निर्भयता, सर्वधर्म समानता, स्वदेशी, स्पर्शभाव को व्रत रूप में स्वीकार किया। यह नई विधा थी, जिससे धर्म सामाजिक बना और समाज में धार्मिकता बढ़ी। सैनिकों को साधुता और साधुओं को शौर्य दिखाने के अवसर मिले। स्वतंत्रता संग्राम में जब अंग्रेज सरकार ने देशभक्तों को जेलों में डाला, तब बिना खड्ग बिना ढाल लिये आजादी चाहने वालों ने जो कीर्तिमान बनाया, उसे कौन विस्मृत कर सकता है? १९३२ में स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के कारण विनोबाजी धुलिया जिले में बंद थे, वहाँ उन्होंने बंदी देशभक्तों के बीच गीता पर व्याख्यान दिये और बताया कि गीता ऐसा ग्रंथ है, जिसके लेखक (महर्षि व्यास) वक्ता (श्री कृष्ण) और श्रोता (अर्जुन) कृष्णमय हो गये थे। व्याख्यान सुनने वाले साथियों का

अनुभव रहा कि श्रीकृष्ण की जन्मस्थली कारागार में प्रवचन करते समय साम्ययोगी विनोबा भी कृष्णमय प्रतीत होते थे। जेल से मुक्त होने के बाद विनोबा ने भेदभाव और कर्मकाण्डों पर आधारित धर्म की जगह अध्यात्म एवं संकीर्णता और परावलम्बन की ओर ले जाने वाली राजनीति के स्थान पर विज्ञान को प्रतिष्ठा दी। कताई, बुनाई, सफाई, कृषि, ग्रामोद्योग और रचनात्मक प्रवृत्ति आदि में शामिल हम जैसे हजारों-लाखों लोग उनसे **'अन्तः शुद्धिः बहिः शुद्धिः श्रमः शान्तिः समर्पणम्'** के संस्कार पाये।

जिस देश में श्रीकृष्ण के समझाने से सुई की नोंक के बराबर कौरवों ने भूमि नहीं दी और पाण्डवों को महाभारत करना पड़ा, उसी देश में पूरब से पश्चिम एवं उत्तर से दक्षिण तक पदयात्रा कर विनोबा ने भूमिहीनों के लिए लाखों एकड़ भूमि प्राप्त की। दो दर्जन से अधिक देशी-विदेशी भाषा जाननेवाले विनोबा सभी प्रदेशों, केन्द्र शासित क्षेत्रों और पाकिस्तान की यात्रा के दौरान राष्ट्र भाषा हिन्दी में ही बोले। कहीं किसी ने उनका विरोध नहीं किया। क्योंकि उनकी वाणी में सर्वत्र करुणा, प्रेम और न्याय की प्रतिध्वनि सुनी गयी। इस क्रान्तिकारी संत ने करुणातत्त्व, समर्पण तत्त्व और सहयोग तत्त्व का पदार्थ पाठ पढ़ाया। यह भी प्रतीति करायी कि समाज का अन्न खाकर समाज से अलग रहने वाले संतों, महात्माओं, तपस्वियों, आचार्यों को चाहिए कि लोगों को सुबह जल्दी उठना, स्वाध्याय करना, काम में ईमानदारी बरतना और पड़ोसी के साथ प्रेम से रहना सिखायें, तभी साधना को सामाजिक मूल्य मिल सकता है। जो गुण सामाजिक मूल्य नहीं बनता, वह दोष हो जाता है। यह भारत में बहुत हुआ है। अब इसे परिमार्जित करने का समय आ गया है। पहले देश समृद्ध था। लोगों को अच्छा खाना पर्याप्त मिल जाता था। वे रात भर कीर्तन कर दूसरे दिन दोपहर में नींद पूरी कर लेते थे। लेकिन आज करोड़ों लोग अधपेट या अधनंगे रहते हैं। अतः सुबह-शाम एक दो घंटा हरि-स्मरण करें। शेष समय नागरिक उत्पादक श्रम करने में लगायें। **मेहनत सेवा श्रम की अब न घड़ी आराम की।** राम ने बंदर-भालुओं से सेवा ली और कृष्ण ने ग्वाल-बालों व गायों की सेवा की।

आराम हराम है और **जय जवान जय किसान** का नारा लगाने वाले हम भारतीयों ने, स्वराज्य प्राप्ति के बाद चिन्तन करने से जैसे विश्राम लेने का मन बना लिया है। व्यावहारिक चिन्तन की जिम्मेदारी सरकार को और धार्मिक चिन्तन की जिम्मेदारी मंदिर-मस्जिदों को सौंप दी और जनता जुलूस निकालने झंडा फहराने को

राष्ट्रीय कार्य मानकर संतुष्ट हो जाती है। वह पाँच साल में एक बार अपना प्रतिनिधि चुनती है। फिर प्रतिनिधियों से बनी सरकार तय करती है कि बच्चों को कौन सी किताब पढ़ानी है। शिक्षक वही पढ़ाते हैं, जो सरकार निर्धारित करती है। पहले अकाल पड़ता या अतिवृष्टि होती, भूकम्प आता या महामारी फैलती तो जनता संकट निवारण के काम में आगे बढ़ कर भाग लेती थी, आज सरकार मुखापेक्षी है। भारतीयों का दिल अच्छा होते हुए भी देश की दशा अत्यंत दयनीय है। आहार शुद्धि, व्यापार शुद्धि और विचारशुद्धि की ओर से धर्म-परायण जनता ने आँखें मूँद ली है। मन्दिर-मस्जिद की ओट में पड़ोसी-पड़ोसी से दुश्मनी निकालने लगे हैं। इसमें अपने-अपने ढंग से हम सभी जिम्मेदार हैं। यह बात अलग है कि जिन लोगों ने देश की जिम्मेदारी उठायी, जनता ने जिन्हें टैक्स और वोट दिये, उनकी जिम्मेदारी ज्यादा है, लेकिन तटस्थ दृष्टि से देखा जाय तो प्रथम जिम्मेदारी आचार्यों की है। विनोबाजी ने गहन अध्ययन कर राजनीतिक परिस्थिति की विवेचना करते हुए आचार्यों से कहा कि जिनको आप नेता समझते हैं, वे जनता के नेता नहीं, बल्कि विशिष्ट पक्षों के नेता हैं। वे अपने अनुयायियों के अनुयायी होते हैं। इस नाते वे सारे समाज को मार्गदर्शन नहीं दे सकते। मैं चाहता हूँ की आज की हालत में आप समाज का नेतृत्व करें। आचार्य प्रतिज्ञा करें कि हम पार्टी-पॉलिटिक्स, पावर पॉलिटिक्स, पेरोकियल पॉलिटिक्स से अलग रहेंगे।

राजनीति से लोकनीति की ओर अग्रसर करने के लिए विनोबाजी ने हमें समझाया कि राजनीति सरकार और सेना पर आधारित है, और हम सहकार एवं सेवा चाहते हैं। राजनीति से स्पर्धा और समस्याएँ पैदा होती हैं, मगर हमें सान्त्वना और समाधान की जरूरत है। राजनीति के कारण परावलम्बन और अस्वस्थता बढ़ती है, किन्तु हमारा कार्य स्वावलम्बन और स्वच्छता बढ़ाना है। राजनीति की बुनियाद में तोड़ने वाली शक्ति, विभाजन को मान्य करने वाले कानून और सृजन को खरीदने वाली दौलत है, हमें हिंसा शक्ति की विरोधी, दण्ड शक्ति से भिन्न, तीसरी शक्ति पर अधिष्ठित अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र, लोकनीति शास्त्र बनाकर सामुदायिक जीवन में सत् चित् आनन्द संक्रमित करना है। इसके लिए विनोबा ने लोक सेवक, शान्ति सेना, आचार्यकुल, सर्वोदय-समाज और जीवनदानी जमात खड़ी की, जिससे व्यसन मुक्ति, अदालत मुक्ति, दस्यु उन्मूलन, साम्प्रदायिक संघर्ष व अशांति शमन के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य हुए। जनता को भी विश्वास हुआ कि समाज रचना कोई शाश्वत वस्तु नहीं है। देश काल के अनुसार वह बदलेगी और बदलनी ही चाहिए। पहले कोई चोरी

करता तो उसके हाथ काटने की सजा दी जाती थी। अब वैसी सजा किसी को जँचेगी नहीं। उसे मानवता के विरुद्ध बड़ा भारी दोष माना जायेगा। मनुष्य हाथों से सेवा कर सकता है। सेवा के साधन काटकर उसका सारा भार समाज पर डालना समझदारी नहीं है। समझदारी की बात तो यह है कि जैसे चोरी करना अपराध है, वैसे असीमित संग्रह करना भी अपराध माना जाय। गांधीजी ने कहा भी है कि किसी देश की सुव्यवस्था की पहचान यह नहीं है कि उसमें कितने लखपति लोग रहते हैं, बल्कि यह है कि देश का कोई व्यक्ति भूखा तो नहीं मर रहा है। अभाव, अन्याय, अज्ञान से मरने वालों की उपेक्षा से ही आतंक फलता-फूलता है। जन प्रतिनिधि के नाम से मनमानी सुविधा झटकने, लाभ के पद कब्जियाने, धर्म की आड़ में दौलत के अंबार लगाने, मजहब को राष्ट्र से श्रेष्ठ मानने, हक के लिए देश को दल-दल में धकेलने, देशवासियों को कर्जदार बनाकर विलासी जीवन जीने के लिए ऊँचे वेतनमान चाहने और अपनी माँगें मनवाने के लिए राष्ट्रीय संपत्ति विनष्ट करने वाले प्रकारान्तर से आतँक को न्योतते हैं। इसलिए लोकनीति को प्रभावी बनाने से ही लोकात्मा सुरक्षित रहेगी।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' को ध्यान में रखकर विनोबा जी ने आचार्यों से अपेक्षा रखी कि जन साधारण अपने छोटे से परिवार या गाँव के बारे में ही सोचता है, उसे जाति, धर्म, पंथ, भाषा, पक्ष, प्रान्त जैसे मामूली प्रश्नों की उलझन में पड़ने से बचायें। विज्ञान ने जब मनुष्य को चन्द्र और मंगल तक पहुँचा दिया है तो वे उसका दिमाग और दिल बड़ा बनायें, जिससे स्पर्धा से अधिक सहयोग, शोषण से अधिक पोषण, स्वच्छंदता से अधिक स्वतंत्रता और संहार से अधिक सृजन के प्रति प्रतिबद्धता पैदा हो। जीवन एवं जगत में तालमेल बिठाने हेतु इस बात पर ध्यान जाना चाहिए कि आचार्यों का होता है— अनुशासन और सत्तावालों होता है— शासन। दुनिया में 'ए' से 'ज़ेड'— अफगानिस्तान से जांबिया तक ३००-३५० शासन हैं। लगभग हर शासन असंतोष, मारकाट और सत्ता संघर्ष का शिकार है। कहीं एक समस्या सुलझती है तो दो नई समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। समाधान होता नहीं। अतः आचार्य ऐसा प्रशिक्षण दें कि सभी घरों के लोग मिलकर गाँव को कुटुम्ब बना लें, सभी प्रान्त मिलकर राष्ट्र की एकात्मकता बढ़ायें और सारे राष्ट्र मिलकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को चरितार्थ करें।

●

मैत्री भाव की आराधना

सांवत्सरिक महापर्व की आराधना कर हमने मन-वचन-काया से हर वर्ष की भांति इस वर्ष भी अपनी राग-द्वेषमयी प्रवृत्तियों के लिए क्षमा-याचना की और उनकी पुनरावृत्ति न करने का संकल्प लिया। समस्त जीव-जगत् के प्रति मैत्री भाव प्रदर्शित कर पर्यावरण असंतुलन रोकने की दृष्टि से साधना का सामाजिक मूल्य सिद्ध करने वाला यह अनुपम अनुष्ठान है।

युगारंभ में सात सप्ताह की वर्षा से बीजांकुर फूटा और शाकाहार सुलभ हुआ, उसी की स्मृति में चातुर्मास के पचासवें दिन संवत्सरी मनायी जाने लगी। कृषि वैज्ञानिक ऋषभ देव ने सिखाया कि जैसे भूमि-संस्कार से आहार प्राप्ति संभव है, वैसे ही वृत्ति-संस्कार से आत्मानन्द प्राप्त होता है। विश्वानन्दोपलब्धि में पर्युषणोपासना सहायक है। संवत्सरी उसे परिणामप्रद बनाकर दया, करुणा, समता को आत्मसात् करा देती है, तब अन्तर्ध्वनि होती है :

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों पर नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा-स्त्रोत बहे।।

जैनों के चौबीस में से १८ तीर्थंकर उत्तर प्रदेश में हुए। उनमें भी चार तो वाराणसी के ही हैं। आचार्य महाप्रज्ञ की विदुषी शिष्या साध्वी श्री कुन्दनरेखा जी के सान्निध्य में इस वर्ष (२००६) श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी समाज ने पर्युषण की पूर्व तैयारी के तौर पर 'धर्म समन्वय एवं विश्व मैत्री' संगोष्ठी की तथा पर्युषणोपरान्त उत्तरप्रदेश श्रावक-श्राविका सम्मेलन आयोजित किया। आचारशुद्धि, विचारशुद्धि, व्यवहारशुद्धि हेतु अपेक्षित तपस्या तो हुई ही, किसानों, कत्तिन-बुनकर परिवारों में हो रही आत्महत्या जैसी समस्या पर भी विचार हुआ और अभिमत बना कि भूमि की उर्वरा शक्ति कायम रखना, बहुफसली गो-आधारित कृषि को बढ़ावा देना, पड़ोसी के सुखदुःख में सहभागिता निभाना मैत्री संगत है, जिससे किसान, बुनकरों को ईमान की रोटी व इज्जत की जिन्दगी सुलभ हो सकती है। समता साड़ी, दया दुपट्टा, धीरज धोती, करुणा कंबल तैयार करने वाले उद्यमियों का 'उपासनावस्त्र' तथा 'जैविक कृषि' के उत्पाद हर पड़ोसी ले और पड़ोसी धर्म-पालन की बुनियादी शिक्षा धर्माचार्य दें तो तीर्थंकरों की भूमि में न कोई आत्महत्या करने को मजबूर होगा, न व्यसन या हिंसाजन्य अपराध ही बढ़ेंगे। अशांत को उपशांत

करने से शान्ति होती है, मैत्री फलती-फूलती है। मित्र एक दूसरे का सुख-दुःख बाँटते हैं। 'जे न मित्र दुख होहिं दुखारी, तिन्हहिं विलोकत पातक भारी'। जिनकी जीविका से जरूरतमंदों की मदद हो और जिनके व्यवहार से संयम बढ़े, वे आराधक हैं। 'वैर न कर काहू सन कोई, राम प्रताप विषमता खोई '— की उक्ति में आराधकों की ही भावाभिव्यक्ति है। वैर मिटाना और विषमता घटाना अहिंसकों का परम धर्म है और परम कर्म भी, जिससे स्वार्थ, परार्थ ही नहीं, परमार्थ हो जाता है।

अमेरिका में पनप रही हिंसा की समस्या सुलझाने हेतु न्यूजर्सी विधान मंडल ने प्रस्ताव पारित कर वहाँ महात्मा गाँधी की अहिंसा, मदर तेरेसा की करुणा, मार्टिन लूथर किंग की अन्याय के विरुद्ध शांतिपूर्ण संघर्ष की भावना पर आधारित पाठ स्कूलों के पाठ्यक्रम में शामिल किये, वैसे ही जागतिक परिस्थिति को देखते हुए वैज्ञानिक उपलब्धियों ने यह अनिवार्य कर दिया है कि हम शांति, सहयोग, संयम, शील एवं सृजनशीलता के प्रति प्रतिबद्धता पैदा करने वाला जीवन विज्ञान अपनायें और अभाव, अन्याय, अज्ञान, आतंक से मुक्ति पायें। सांवत्सरिक महापर्व इस दृष्टि से सर्वाधिक प्रासंगिक है और सामयिक भी, क्योंकि इससे वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक समस्याओं के समाधान मिलते हैं और अलग-अलग उपासना पद्धतियों में आस्था रखने वाले धर्म प्रेमी लोग भी समझते हैं कि अगल-बगल में रहने से सामाजिकता नहीं आती, वह तो साथ रहने से आती है। साथ रहने वालों की हिंसा में रस लेने वाली मानसिकता रूपान्तरित करने की क्षमता धर्म में है। इसलिए मनुष्यों को जोड़ने की कड़ियाँ बनने की जगह, जब धर्म बेड़ियाँ बन जाय तो उससे भी मुक्त रहकर सहज जीवन को निरापद बनाना होगा। उसके बिना न व्यष्टि हित सध सकता है, नहीं समष्टि का हित।

आज का विश्व मानव समुदाय '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' का रूप ले रहा है। अब दिमाग की भांति दिल को भी बड़ा बनाये बिना हम जी नहीं सकते। हमें एक दूसरे के साथ जीना और रहना सीखना ही होगा। अतः आप अपने-अपने क्षेत्र के धर्मप्रिय महानुभावों, आचार्यों, समाजवैज्ञानिकों से परामर्श कर सांस्कृतिक जीवन को श्रीसंपन्न बनाये रखने बाबत सुझाव लें और विश्वमैत्री को बल दें— यही संस्कृति का तकाजा एवं मैत्री दिवस की माँग है।

●

पुरुषार्थ और परमार्थ का विरोधाभासी प्रभाव

गांधी जयन्ती पर देश-विदेश में गांधी का स्मरण होता है। सन् १८६९ से १९४८ की अल्प समयावधि में गांधी ने इतना पुरुषार्थ किया कि उन्हें **सहस्राब्दीपुरुष** मान लिया गया। वैसे देखा जाय तो **मोहनदास करमचन्द गांधी** डरपोक, साधारण और भोगोन्मुखी व्यक्ति थे, जो समस्याओं का सामना करते हुए निर्भय, असाधारण और योगोन्मुखी हुए। उनके चरित्र में मानवोचित दुर्बलताएँ थीं, जिन पर विजय पाने से वे महात्मा कहलाये और राष्ट्रपिता भी। उनकी गणना न्यूटन से अधिक बुद्धिमान और वेलिंगटन से बड़े योद्धा के रूप में होती है। उनके विरोधाभासी गुणावगुण न तो विश्लेषित हो सकते हैं, न व्याख्यायित। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों को अपमान जनक स्थिति से उबारने के लिए सविनय अवज्ञा, सत्याग्रह जैसे शस्त्र आविष्कृत कर निहत्थे लोगों को विजय श्री दिलायी। इसी तरह अंग्रेज-सरकार की गुलामी से मुक्ति-चाहने वाले स्वतंत्रता संग्राम सैनिकों से प्रतिज्ञा करवायी कि हम सामने वालों को दुःख नहीं देंगे। वे अगर दुःख देंगे, तो हम दुःख सहेंगे। इससे लोगों को धर्म, नीति, एकता, सत्यपालन का शिक्षण मिला और अंग्रेज-सरकार भी लोकमत का आदर करना सीखी। सरकार को दबाकर नहीं, उसकी न्यायवृत्ति जगा कर काम करवाने से द्वेष के तमाम बल उचित दिशा में प्रवृत्त हुए। प्रवृत्ति-परायण जन समुदाय से कहा कि "मैं हिन्दुस्तान को बड़े अभिमान के साथ अपनी जन्मभूमि मानता हूँ। यह अरब सागर, हिन्द महासागर, बंगाल के समुद्र से घिरा और हिमालय का मुकुट पहनने वाला देश है; यहाँ सदियों पूर्व अहिंसा सिद्धान्त का उद्घोष किया गया है। इसे पश्चिम को अहिंसा धर्म सिखाना है। हिंसामय जगत् में अहिंसा मय बनकर रहना ही पुरुषार्थ है। अहिंसा के बिना न शान्ति रह सकती है नहीं सुख मिल सकता है।"

अहिंसा निष्ठ गांधी सृष्टि में सुव्यवस्था, समृद्धि, सौमनस्य बढ़ाने का प्रचण्डकार्य करते रहे, लेकिन ईश्वरार्पण बुद्धि के कारण उनका कर्मयोग अनासक्त योग में समा गया और वे कर्ता होकर अकर्ता बने। विकर्म और मन की शुद्धि ने उनसे कहलवाया कि "हिन्द में हुए अनेक वीर और पवित्र पुरुषों का खून मेरी नसों में बहता है। हिन्द में जन्मे महापुरुषों की हड्डियों से ही मेरी हड्डियाँ बनी हैं। भूतकाल में हुए और भविष्य में होने वाले हिन्दियों के बीच हमेशा का संबन्ध है और उनका संबन्ध मेरे साथ है। हिन्द की सब कौम और सब धर्म के पुत्र मेरे भाई ही हैं।" भाई का फर्ज बजाते हुए गांधीजी

ने १९०० मील लम्बे एवं १५०० मील चौडे (अब पूर्व से पश्चिम तक २९३३ कि.मी.) तथा उत्तर से दक्षिण तक ३२१४ कि.मी. के ३२ लाख ८७ हजार २६३ वर्ग कि.मी. भूभाग वाले विशाल देश का भ्रमण किया। भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी प्रदेश के लोगों को समझाया कि आप तमिलनाडु बनाम आंध्र, गुजरात बनाम महाराष्ट्र या पंजाब आदि के भ्रम में ड़ालने वाले नाम भूल जायँ और केवल हिन्दुस्तान और उसके वैभव का स्मरण करें। आखिरकार दुनिया तो भारत को जानती है। दूसरे देशों के लोग हमें गुजराती, मराठी, तमिल आदि के रूप में नहीं, केवल भारतीय रूप में जानते हैं। इसलिए हमें समस्त विघटनकारी प्रवृत्तियों को दृढ़तापूर्वक दबाना चाहिए। अपने को भारतीय समझ कर और उसी के अनुरूप आचरण करना चाहिए। मैं भारत का एक विनम्र सेवक हूँ। भारत की सेवा के द्वारा सम्पूर्ण मानवता की सेवा कर रहा हूँ। अपने राष्ट्र की सेवा विश्व की सेवा से भिन्न नहीं है— यह सिद्धान्त स्वीकार करने से ही विश्व की स्थिति सुधर सकती है और हमारी इस पृथ्वी पर स्थित राष्ट्रों के पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष समाप्त हो सकते हैं।

दुनिया से ईर्ष्या-द्वेष मिटाने का प्रयास **'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय'** की भावना से महात्मा बुद्ध ने एवं **'सव्वजग जीव रक्खण दयट्ठयाए'** के उद्घोष के साथ तीर्थंकर महावीर ने ईसा पूर्व पाँच सौ वर्ष के आसपास आरंभ किया था और श्रमण, श्रमणी, श्रमणोपासक, श्रमणों पासिकाओं को इस दिशा में सक्रिय किया था। लेकिन आर्थिक विषमता, सामाजिक असमानता, राजनीतिक उठापटक और धार्मिक कट्टरता से मानव समाज की एकता आघातित होती रही। आर्थिक जगत् में शोषक-शोषित, सामाजिक जगत् में मालिक मजदूर, राजनीतिक जगत् में शासक-शोषित, धार्मिक-जगत् में पूज्य-पूजक वर्ग ने अविरोधी जीवन-पद्धति अपनाने का प्रयत्न नहीं किया, इससे किसी न किसी रूप में जनता को त्रस्त होना पड़ा। जनभावना का अध्ययन कर १९२० में म. गांधी ने 'यंग इंडिया' में लिखा : "हमने अपने देश में जाति व्यवस्था विकसित की है और यूरोप वालों ने वर्ण-व्यवस्था। अगर वर्ण-व्यवस्था कुछ सामाजिक मूल्यों को कायम रखने में सहायक होती है तो जाति प्रथा भी इस दिशा में, उससे अधिक नहीं तो बराबर ही सहायक है। जाति प्रथा भी खूबी इस बात में है कि इसका आधार धन नहीं है। यह उच्चता या नीचता की द्योतक भी नहीं है। यह तो अलग-अलग दृष्टिकोणों और तद्नुरूप जीवन पद्धतियों की स्वीकृति मात्र है।'

सामाजिक एकता व जीवन-मूल्य बचाये रखने की जगह जाति एवं वर्ण व्यवस्था के हिमायती वर्ग संघर्ष की राह पर चल पड़े, तब म.गांधी ने **वर्ग संघर्ष की जगह वर्ग-निराकरण का विचार** पेश किया, जो केन्द्रित सत्ता व संपत्ति को विकेन्द्रित

करने की तकनीक है। विकेन्द्रित व्यवस्था से श्रमिक, मजदूर, कारीगर, किसान, कर्मचारी आदि समाज के हर तबके के लोगों की संघर्ष में लगने वाली शक्ति सृजन में लगने लगी। राजनैतिक क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण, आर्थिक क्षेत्र में समानता, धार्मिक क्षेत्र में समन्वय और पारिवारिक क्षेत्र में स्वावलम्बन का प्रतीक बना चरखा। उससे 'फ्रोम इकोनामिक्स टू इकोलॉजिक्स' की कला विकसित हुई। उस कला के निष्णात विनोबाजी ने पते की बात कही कि मिलों में शोक चक्र चलता है, जिससे बचाने के लिए गांधीजी ने हमें चरखे के तौर पर अशोक चक्र दिया है। शोक चक्र विरोधी परिश्रम का चिन्ह है, अशोक चक्र अविरोधी परिश्रम का चिन्ह है। भोगवादी जीवनशैली और केन्द्रित उत्पादन टालने से ही पारस्परिकता बढ़ती है।

पूँजीवादी उद्योगवाद को म. गांधी ने सभ्यता का संकट बताया था। उसने अनियंत्रित अधिकार समर्थक संविधान बनाने वाले नीति-नियंताओं पर नियंत्रण रखा है। राजनेता, नौकरशाह आदि उसी के इशारे पर नाचते हैं। विश्वबैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के माध्यम से उसने आज सारे संसार को लाभप्रद बाजार और सभी मनुष्यों को उपभोक्ता मात्र बना रखा है। पूँजी, औद्योगिकी और उन्नत तकनीक से सद्यः विकसित व विकासशील देश आर्थिक उपनिवेश बनकर रह गये हैं। भारत की राष्ट्रीय अस्मिता और आर्थिक संप्रभुता भी संकट में है। खतरा बढ़ता देख कर ही पिछली सदी के ५३ नोबेल पुरस्कार विजेता मनीषियों का संयुक्त घोषणा पत्र प्रकाशित हुआ, जिसमें दुनिया के सभी सद्भावना संपन्न लोगों से अपील की गयी कि "प्रत्येक व्यक्ति अपनी हैसियत में दुनिया के ऐसे लोगों की जीवन रक्षा के लिए कदम उठाये, जो भूख एवं अर्ध-विकास से पीड़ित हैं और प्रचलित राजनीतिक व आर्थिक दुश्चक्र के शिकार हैं। अनिवार्य है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति किसी जीवित प्राणी को बचाने और प्रमाद, अकुशलता या उपेक्षा द्वारा भी उसे न मारने व उसके कष्ट निवारण की आवश्यकता को सर्वमान्य कानून की सत्ता प्रदान करे। यदि कमजोर लोग अपने को संगठित कर उन थोड़े, किन्तु उपलब्ध शक्तिशाली साधनों का इस्तेमाल करते हैं, जैसा गांधीजी द्वारा निर्दिष्ट अहिंसात्मक कार्यक्रम तथा सीमित व उपयुक्त उद्देश्यों की स्वीकृति व प्राप्ति के लिए किया गया तो हमारा निश्चित मत है कि हम अपने समय की महा विपत्ति को समाप्त कर सकते हैं। आणविक शस्त्रास्त्रों से युक्त व अपार सैन्य शक्ति वाले राष्ट्र भी अब घरेलू तथा आतंकवादी हिंसा से त्रस्त होकर गांधी विचार को नये सिरे से जानने-अपनाने को आतुर हैं, क्योंकि सर्वनाश से बचने का यही एक मार्ग है। **'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'**

२ अक्टूबर को गांधी जयंती और ३० जनवरी को शहादत दिवस पर भले ही गांधी की समाधि पर प्रार्थना सभा की जाती है, लेकिन देशवासी गांधी की सिखावन

भूल गये हैं। वे या तो गांधी-स्तुति कर संतुष्ट होते हैं या उनकी टीका कर अपने को आधुनिक भारत का विचारक कहलाने का दंभ पालते हैं। लेकिन विश्व के वैज्ञानिक और विकास के पक्षधर अनुभव कर रहे हैं कि अब सादगी, सदाचार और संस्कृति को मूल्य हीन बनाने का व्यामोह त्याग कर आर्थिक दृष्टि से अपने गाँव को विश्व तथा सांस्कृतिक दृष्टि से विश्व को गाँव मानकर जल-जंगल, वृक्ष-वनस्पति, पशु-पक्षी, सृष्टि-स्रष्टा को शोषित होने से बचाना होगा। गांधी ने साबरमती व सेवाग्राम आश्रम में रहने वाले साथियों और गांधीजनों को यही सिखाया और राष्ट्रप्रेम का पाठ पढ़ाते हुए कहा था कि यह प्रेम का धवलगिरी नहीं है, परन्तु उसका दार्जिलिंग है, जहाँ से धवलगिरी के सुदर्शन होते हैं। देखने वाले सोचते हैं कि यदि प्रेम का दार्जिलिंग इतना सुन्दर है तो सामने चमकने वाला प्रेम का धवलगिरि कितना अधिक सुन्दर होगा। हम राष्ट्रप्रेमी तभी बन सकते हैं, जब गांधी-ज्ञान को आत्मसात करें, क्योंकि यह सृष्टि विज्ञान का लोक-कल्याणकारी दर्शन है। इसका पठन, पाठन, अनुशीलन करने से 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' यह सृष्टि हमें ईश का आवास लगती है। ईश्वर हम से पत्थर, वृक्ष, जन्तु, पक्षी इत्यादि के मार्फत बोलता है। वेद, कुरान, बाइबल आदि उसी के अपूर्ण शब्द हैं। चूंकि हम लोग स्वयं अपूर्ण हैं और तरह-तरह के राग-द्वेष से हमारा चित्त विभ्रमित रहता है, इसलिए इतना जान लेना काफी है कि जो कुछ परमार्थ साधने के लिए अनुकूल हैं, वह सर्वोच्च शास्त्र है। जो इस नियम के विरुद्ध है, उसे अस्वीकार किये बिना सत्य तक पहुँचना और संतुष्टि पाना संभव नहीं है। असंतोषी के पास चाहे जितनी सम्पदा हो, सत्ता हो या प्रज्ञा हो, वह इच्छाओं का दास बना रहता है। इच्छाओं का दास होने से बढ़कर और कोई दासता नहीं है। आजाद तथा गुलाम होना हमारे हाथ में है। इसलिए स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व करते हुए गांधी जी ने प्रेम और प्रतिकार की संगति सिद्ध की और इतिहास को नई दिशा दी।



सृष्टि एवं सभ्यता को बचाने वाला अभियान

हम सभ्य हैं। बड़ों का आदर, बराबर वालों से मैत्री और छोटों के प्रति वत्सलता हमारे व्यवहार की कसौटी है। मत्स्यावतार, कच्छपावतार, वृषभावतार, नृसिंहावतार, वामनावतार की अवधारणा में हमारी विकास यात्रा का इतिहास है। हिमालय से हिन्द महासागर तक फैले भारतीय भू भाग में बसे हजारों किस्म के मनुष्येतर प्राणी हमारे सह-यात्री हैं, जो हमें 'आत्मवत्' लगते हैं। यहाँ गाय की सेवा की जाती है और कबूतर जैसे पंछी की रक्षा हेतु जान की बाजी लगा दी जाती है। तुलसी के बिरवे को जल चढ़ाये बिना हम मुँह में पानी तक नहीं डालते। हमारे बालक शेरों का शिकार करके नहीं, वरन् शेरों के साथ खेलकर खुश होते हैं। बाघ हमारा राष्ट्रीय पशु है। मयूर राष्ट्रीय पक्षी है। उन्हें वन्य प्राणी (सुरक्षा) अधिनियम १९७२ के तहत पूरा संरक्षण प्राप्त है।

जिओ जिलाओ के वर्तन से अभय दान पशु पक्षी पाते।।
वृक्ष फूल-फल कन्द मूल हम पोषित वर्धित कर हरषाते।।
माता मानें पर नारी को, पर पति को जब भाई जानें।।
पत्थर समझें पर धन को तब कहलाते जन यहाँ सयाने।।

सयाने लोगों ने शिकारी जीवन छोड़कर कृषि संस्कृति अपनायी। कृषि-शोधकर्ता ऋषभदेव कुशल कृषक थे। 'अन्नं बहुकुर्वीत तद् व्रतम्' अन्नोत्पादन का व्रत लेने वाले ऋषि कहलाये। खेतों की बहती मिट्टी रोकने हेतु आरुणि जैसा ब्रह्मचारी स्वयं मेंढ़ बना। कृषि कार्य में सहायक बना वृषभ और बीमारी तथा बुढ़ापे का सहारा साबित हुई गाय, जिससे जीवन जीविका को पोषण मिला। तपस्वी गृत्समद ने कपास से रूई और रूई से सूत का धागा निकालना सिखाया। सन्त कबीर जैसों ने 'झीनी झीनी झीनी झीनी बीनी चदरिया'। हजारों वर्षों की इस विकास यात्रा में जब हमें गाय से दूध और घी मिलने लगा तो मांसाहार छोड़ना संभव हुआ। कपास की खेती में बैलों की मदद मिल जाने से बने कपड़ों के कारण हमारी गर्मी सुरक्षित रहने लगी तो खुराक संतुलित हो गयी (काका कालेलकर)। ४०० बीमार बूढ़ी गायों को स्वस्थ व संवर्धित कर सत्यकाम ने जब उनकी संख्या एक हजार तक पहुँचा दी तो उसे हमने ब्रह्मज्ञानी की उपाधि दी। जिओ के साथ जिलाओ का समन्वय साधने से गाय के सहारे गाँव, ग्रामोद्योग, ज्ञानियों का वर्चस्व बढ़ा। 'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः'। उपनिषद् रूपी गायों का दोहन कर गीतामृत पान कराने वाले गोपाल कृष्ण ने हलधर (बलदेव) की अगुआई में बिना कृषि-गोपालन किये मौज मस्ती मारने वालों का शासन उलटा। गोपाल और हलधर भारतीय संस्कृति के नायक बने।

ई.पू. चौथी, तीसरी सदी भारतीयों के लिये विशेष कष्टकर रही। एक ओर ईरानी-यूनानी आक्रमण हुए और दूसरी ओर प्रकृति-प्रकोप के चलते लगातार १२ वर्ष तक पानी की एक बूँद नहीं बरसी। कुएं, तालाब सूख गये। नदियों ने नालियों का रूप ले लिया। बिन पानी सब सून। गोधन, गजधन, बाजिधन विनष्ट हुआ। किसी तरह वर्षा हुई भी तो दुबारा १२ वर्षों का अकाल पड़ गया। राजाओं ने अपेक्षित राहत नहीं पहुंचायी। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में "राज्य रक्षा, भोगविलास, परिवार की पुष्टि और सबसे बढ़कर पुरोहितों की तुष्टि के लिए राजा लोग सूर्य की भांति प्रजा का धन सोखने लगे" (वर्तमान भारत)। प्राकृतिक विपदा टली तो राजनैतिक विपदा से भारतीय संत्रस्त हो गये। तब चन्द्रगुप्त ने राजसत्ता संभाली और गाय, घोड़ा बैल, भैंस, बकरी आदि पशुओं तथा विशाल चारागाहों से होने वाली राजकीय आय को महत्व दिया। वह आय 'व्रजविभाग' के अन्तर्गत राजकोष का अंग थी। देवानांप्रिय अशोक ने ई.पू. २६८-२३२ के दौरान सामाजिक जीवन में परिवर्तन किये और मद्य, मांस, मृगया (शिकार) आदि पर प्रतिबन्ध लगाया। भूतदया के प्रचारार्थ विशेष अवसरों पर होने वाला पशुवध रोका और बहुत से जीवों को अवध्य ठहराया। मनुष्यों और पशुओं के लिए चिकित्सालय खोले तथा गोशालाओं की स्थापना की। उसके पश्चात् राजनैतिक उथलपुथल के बीच भी गोवंश कभी उपेक्षित नहीं रहा। इसी कारण बाबर ने हुमायूं को भारत का शासन सूत्र सौंपते हुए गो हत्या से परहेज करने की सिखावन दी। मुगल बादशाहों ने गो हत्या को प्रतिबंधित रखने के साथ-साथ पशु संपदा बढ़ाने वाले विभाग खोले। वही देखकर १३वीं सदी में मार्कोपोलो ने लिखा कि 'भारतीय बैल हाथी जैसे हैं। उनकी मेहनत से खेती होती है। व्यापारी उन्हीं की पीठ पर गेहूँ, चावल, दाल आदि लादकर एक जगह से दूसरी जगह ले जाते हैं। गायों के प्रति जनता में श्रद्धा का भाव है। गोबर से लोग घर-आंगन लीपते हैं और उस पवित्र स्थान में बैठकर उपासना करते हैं।' 'कृषि गोरक्ष्य वाणिज्यम्' के संगम ने भारतीय अर्थ-व्यवस्था को पूर्णता दी और प्रतिष्ठा भी, जिसके चलते भारत की खोज करता कोलम्बस आया। वह सन् १४०२ में भारत से कल्पतरु (गन्ना) और कामधेनु (गाय) ले गया। माना जाता है कि उसके साथ जो गाय गयी, उसी की संतति से अमेरिका, इंग्लैण्ड, डेनमार्क, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड सहित यूरोप के साझा बाजार के ९ देशों में गोधन बढ़ा। वे देश सम्पन्न हुए। भारत विपन्न हो गया। क्योंकि भारत की गोरी सरकार ने चारागाह सम्बन्धी नाना कर लगाये और गोचरभूमि में गाय-बैलों का चरना रोक दिया। '**स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है**' का नारा बुलन्द करने वाले लोकमान्य तिलक ने लिखा है कि अंग्रेजों की पशु-विरोधी नीति के चलते हमारे गाय-बैल बिला गये। दूध दही का अभाव हो गया। सभी राष्ट्र नेताओं ने गोरक्षा के पक्ष में आवाज उठायी, जिसके फलस्वरूप बम्बई सरकार ने पशु समिति बनायी और उसने १९३९ में सिफारिश की कि समस्या की गंभीरता को देखते हुए जीव दया सम्बन्धी आवश्यक कानून बनाया जाय। पशु वध रोके

बिना भारतीय जनता का समाधान होने वाला नहीं है, क्योंकि महात्मा गाँधी के श्ब्दों में **गोरक्षा का प्रश्न स्वराज्य से भी बड़ा है।**

१५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतंत्र हुआ। तदनन्तर भारतीय संविधान की धारा ४८ में मान्य हुआ कि सरकार कृषि तथा पशु पालन को आधुनिक एवं वैज्ञानिक ढंग से संवर्धित करने का प्रयास करेगी और खासकर गाय, बछड़े एवं दुधारू व खेती के लिए उपयोगी पशुओं की कत्ल बन्द करेगी। लेकिन हो गया उल्टा ; अनुपयोगी पशुओं के नाम पर उपयोगी पशु कटने लगे और मांस निर्यात का व्यापार शुरू हो गया। संत-महन्तों तथा गोभक्तों के आन्दोलन सरकार ने कुचल दिये। स्वामी दयानन्द की सिखावन भी भुला दी गयी कि "एक गाय की हत्या कर केवल ८० व्यक्ति ही एक समय मांसाहार कर सकेंगे, जबकि उसे पालकर २५,७४० व्यक्ति एक समय दुग्धपान कर सकते हैं।' 'शराबे शौक पीता जा' गाने और मांस खाने वाले तात्कालिक लाभ के लिए कत्लखाने खोलने लगे। १७ मई १९८६ को संसद में कृषि एवं विकास मंत्री ने बताया कि 'भारत में २८०० बूचड़खाने हैं और प्रतिवर्ष २० लाख गायें काटी जा रही हैं। वर्तमान कानून के अन्तर्गत स्थानीय निकायों को गोवध की कुछ शर्तों के साथ छूट है।' बंगाल, केरल, अरुणाचल, मेघालय, नागालैण्ड में इस छूट का पूरा फायदा उठाया जा रहा है। महाराष्ट्र भी पीछे नहीं रहा। मुम्बई का देवनार कत्लखाना जब प्रतिवर्ष १८० करोड़ रुपये मूल्य का पशुधन काटने लगा तो विनोबा जी के आदेश से ११ जनवरी १९८२ को वहाँ गोवंश हत्या बंदी सत्याग्रह शुरू किया गया, जो अब तक चालू है। सत्याग्रह करने वालों की मांग है कि 'गाय हमारी माता है। गोहत्या मातृहत्या है। गोहत्या बंदी भारतीय संस्कृति का आदेश है। यह भारतीय संविधान का निर्देश है। इसके लिए भारत सरकार वचनबद्ध है और भारतीय संसद का लक्ष्य है। इसलिए सारे भारत में तुरन्त गोहत्या बन्द होनी चाहिए और गोमांस निर्यात पर प्रतिबंध लगाना चाहिए।' केन्द्र सरकार प्रतिबंध लगाने के स्थान पर आधुनिकतम कत्लखानों के लाइसेंस देती जा रही है।

हम पशु रक्षण, संवर्धन, ऊर्जा की बात करते हैं तो केन्द्रीय कृषि मंत्री पशु ऊर्जा सम्मेलन (५ मार्च १९९४) में बोलते हैं कि हमें ७ करोड़ ४० लाख बैलों और ८० लाख भैसों से प्रतिवर्ष १० करोड़ रुपये की ४ हजार हार्स पावर ऊर्जा प्राप्त होती है। देश में ९० करोड़ मवेशी ७.४ करोड़ भैंसें १०.७ करोड़ भेड़-बकरियाँ आँकी जाती हैं। गैर-पारंपरिक ऊर्जा मंत्रालय के अनुसार हमारे संसाधन व उपकरण पुराने होने से उनकी ऊर्जा का यथेष्ट उपयोग नहीं होता, तब भी उनसे लगभग ७० लाख टन पेट्रोलियम पदार्थ की बचत होती है। वे ६० अरब रुपये का दूध ५० अरब रुपये का परिवहन, ३० अरब रुपये की जैविक खाद और २० करोड़ रुपये मूल्य की गैस सुलभ कराते हैं। उनकी ऊर्जा का यथेष्ट उपयोग करने के बजाय उन्हें १९९४-९५ में देश के करीब ४ हजार बूचड़खानों, १५० बड़ी तथा छोटी मांस प्रसंस्करण इकाइयों के हवाले कर दिया। यही सबसे बड़ी त्रासदी है। इसलिए

गोभक्तों, गोशालाओं, गो वैज्ञानिकों को चाहिए कि अपने संसाधन एवं उपकरणों को प्रासंगिक बनायें तथा पशुओं से प्राप्त होने वाली ऊर्जा में इजाफा कर पशुओं को और उपयोगी बनायें।

१९८१ में एक हेक्टेयर में २ किलो रासायनिक खाद लगी, वहीं १९९१ में ५१ किलो लगी। इससे यह साबित हो गया कि किसानों को खाद की सबसे ज्यादा जरूरत है और रासायनिक खाद के पीछे वे बड़े कारखानों की तिजोरियाँ भरने को विवश हैं। गोबर खाद का उत्पादन बढ़ाकर यह विवशता खत्म की जा सकती है। एक गाय के गोबर से एक हेक्टेयर भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रह सकती है। एक टन कचरे को १० किलो गोबर के माध्यम से खाद में बदला जा सकता है। २४ बैलों से २४ घंटों में पाँच हार्स पावर विद्युत् पैदा की जा सकती है-- आदि प्रयोग जगह-जगह हुए हैं। उनका व्यापक प्रचार-प्रसार हो तो पशुओं की उपयोगिता स्वतः सिद्ध हो जायगी और पशु कसाइयों के हाथों में जाने से बच जायेंगे। प्रयोगों के अनुरूप गोशालाएँ कार्ययोजना बनायें और एक-एक गाँव में गोबर गोमूत्र का पूरा उपयोग करने की जिम्मेवारी ले लें तो देखते-देखते भारत की आधी आबादी हेतु आवश्यक गैस मिल जाय एवं इन्धन के रूप में गोबर का इस्तेमाल होना रुक जाय और वन-विनाश भी बच जाय। इसके अलावा ढाई करोड़ टन नाइट्रोजन, फास्फेट आदि तत्वों को धारण करने वाली जैविक खाद मिलने से विदेशी खाद का आयात कर उस पर २१७९८ करोड़ रुपये की सब्सिडी देने की जरूरत भी नहीं रह जायेगी। ये आंकड़े पिछले दशक से जगह-जगह दुहराये जा रहे हैं, लेकिन इसकी सार्थकता साबित करने की किसी संस्था ने अगुवाई नहीं की। यदि की होती तो भारत की कृषि योग्य ४८ करोड़ एकड़ भूमि और १५ करोड़ ८० लाख एकड़ बंजर भूमि के लिए ३२० करोड़ टन खाद सुलभ करने की होड़ लग जाती। अभी देर नहीं हुई है। समय रहते गोशालाएँ, गोभक्त, गो सेवा आयोग, ग्राम सभाएँ, ग्राम पंचायतें मिलकर परिणामप्रद योजनाएँ पूरी करने में लगें और टेक्नोलॉजी सहयोग, विपणन सहयोग, गुणवत्ता सहयोग प्राप्त करें। नेशनल इन्स्टीच्यूट फॉर ट्रेनिंग इन इण्डस्ट्रियल इंजीनियरिंग (नाईटी) ने रेहट में लगे बैल के साथ घूमने वाले गेयर से बिजली उत्पादित करने का उपकरण बनाया है। केन्द्रीय यांत्रिकी अनुसंधान संस्थान ने बैल के साथ-साथ किसानों की भी २ से ४ गुनी क्षमता बढ़ाने वाले पशु चालित तिपहिया संयंत्र तैयार किये हैं। गोबर से लिपे भवनों पर अणु विकीरण का प्रभाव नहीं होता तथा गायों की गर्मी से मकान गर्म रखने के प्रयोग चर्चित हो रहे हैं। गोमूत्र से औषधियाँ बन रही हैं। असाध्य रोग ठीक हो रहे हैं। इस तरह के ग्रामोपयोगी विज्ञान की गोपालकों को जानकारी दी जाय तो बैलों के कार्य दिवसों में भी इजाफा हो सकता है और गोशालाएँ प्रयोगशालाएँ बन सकती हैं।

गोशालाओं को दया की प्रेरणा से बहुत समय तक चलाया जा चुका। अब उन्हें राष्ट्र की आवश्यकता, समाज की अपेक्षा, संस्कृति की प्रतिष्ठा और जागतिक परिवेश को ध्यान

में रखकर संचालित करना होगा। उदारीकरण एवं खुले बाजार की नीति ने हमें विश्व के परिप्रेक्ष्य में सोचने को बाध्य कर दिया है। सर्वे के अनुसार आज पृथ्वी पर जितनी जमीन है, उसका १० प्रतिशत हिमाच्छादित है। १५.५ प्रतिशत रेगिस्तान, पत्थर या सागरीय रेत से ढंका है। ७.४ प्रतिशत दलदली है। २ प्रतिशत खदान, सड़क ने घेर रखा है। करीब ३ प्रतिशत अनुपजाऊ है। कृषि योग्य भूमि ११ प्रतिशत भी नहीं है। ऐसी स्थिति में दुनिया के लगभग ६ अरब आदमियों को खिलाने की समस्या है। जिन देशों के पास प्रतिव्यक्ति आधा एकड़ से भी कम भूमि है, उनके लिए मांसाहार के अवसर नहीं हैं। मांसाहारी को अपने साथ-साथ अपने द्वारा खाये जाने वाले पशु को भी खिलाने हेतु कम से कम ४ एकड़ भूमि चाहिए, जब कि उतनी भूमि में चार शाकाहारी जी सकते हैं। इसीलिए विदेशों में जो गायें दूध देना बंद कर देती हैं या कम दूध देने लगती हैं, उन्हें काट कर खा जाते हैं। भारतीयों ने हजारों वर्षों पूर्व गाय को अवध्य माना और निरामिष भोजन को मान्यता दी। उसका महत्त्व अब विश्व के वैज्ञानिक समझने लगे हैं। जीव-विज्ञान नहीं समझने से ही जहाँ विकसित देशों के पास प्रति सौ मनुष्यों के पीछे २६८ पशु हैं, वहाँ भारत में ३८ ही हैं और उनमें भी गायें मात्र ९ हैं, जिन्हें बचाने में गोशालाएँ महत्त्वपूर्ण योग दे सकती हैं।

पशुगणना के अनुसार संसार में जितनी गायें हैं, उनका १५ प्रतिशत भारत में है, जिनमें ५ करोड़ ४७ लाख गायें, ७ करोड़ ३३ लाख बैल और ६ करोड़ ६८ लाख बछड़े बछड़ी माने जाते हैं। इनमें हरियाणा, लाल सिंधी, गीर, थारपारकर, साहीवाल, राठी आदि नस्लें मुख्य हैं। हमें कम से कम २० करोड़ गायें और १२ करोड़ बैल चाहिए। उतनी संख्या बढ़ाने के लिए गोशाला-संचालकों को गो-संवर्धन अभियान का नेतृत्व संभालना होगा, तभी नदियाँ बचेंगी, पहाड़ बचेंगे, पर्यावरण बचेगा, गोवंश बचेगा और जीव-जगत बचेगा।

'दूसरों को बचाने से ही जीवन सम्पन्न व समृद्ध होता है। मानव जंगल के कानून छोड़कर जीवन नष्ट होने से बचाने की दिशा में क्रमशः बढ़ा, यही सभ्यता का इतिहास है' (दादा धर्माधिकारी)। इस इतिहास को हमारी गोशालाएँ, गोरक्षा समितियाँ, गोसेवा आयोग, ग्राम सभाएँ ग्राम पंचायतें गरिमा प्रदान कर सकती हैं और व्यापक दृष्टि से अल्प कालिक व दीर्घकालिक योजनाएँ बनाकर २१वीं सदी के लायक स्थायी विकास की सशक्त भूमिका का निर्वहन कर सकती हैं।

●

मुसीबतों से मुक्ति दिलाने वाला मसीहा

आज यूरोप, अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के अनेक देशों में गांधी-विचार का अध्ययन हो रहा है। सभी अनुभव कर रहे हैं कि हम गोरे हों या काले, इस धर्म को मानें या उस धर्म को, विकसित समाज में रहें या अविकसित – हमें परस्पर एक और नेक बनकर रहना होगा। वैज्ञानिक आविष्कार एवं प्रतिस्पर्धा के चलते छोटे-बड़े देश सैन्य शक्ति और संहारक शस्त्रास्त्र बढ़ाते हैं, उससे केन्द्रित सत्ता दृढ़ होती है और बड़े-बड़े उद्योगों को प्रश्रय मिलता है, लेकिन आम आदमी के लिए ईमान की रोटी कमाना व इज्जत की जिन्दगी जीना कठिन हो जाता है। उसकी बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी करने की दृष्टि से गांधीजी ने रचनात्मक प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ कीं, जिससे भारत एशिया की ही नहीं, दुनिया के हर हिस्से की कुचली-चूसी हुई जातियों की आशा का केन्द्र बना। इसलिए गांधीजी विश्व में न्यूटन से अधिक बुद्धिमान और वेलिंगटन से बड़े योद्धा माने गये। सर्वपल्ली डा. राधा कृष्णन् के शब्दों में "गांधीजी अतीत एवं भविष्य की देहली थे। उनमें अतीत के युगों का समन्वय था और भावीयुगों के निर्माण की शक्ति थीं", जिससे भारत में 'नये युग का सूत्रपात' हुआ।

जन्म और शिक्षा-संस्कार

मोहनदास गांधी संवत् १९२५ के भाद्र बदी १२ अर्थात् सन् १८६९ के अक्टूबर माह की २ तारीख को पोरबन्दर (सौराष्ट्र) में पैदा हुए। उनके पिता कर्मचन्दजी पोरबन्दर के दीवान थे। माता पुतलीबाई साध्वी स्त्री थीं। वे पूजा-पाठ किये बिना भोजन नहीं करती थीं। वे अपने बच्चों को अच्छे काम करने की शिक्षा देतीं और बुरे काम न करने का उनसे वचन लेती थीं। कर्मचन्द गांधी पोरबन्दर से कोर्ट के सदस्य होकर राजकोट चले गये, वहाँ की पाठशाला में मोहनदास को विद्याध्ययन के लिए भेजा गया। वह अपने स्कूल में नियमित और यथा समय पहुँचते थे। खेलकूद की क्रियाओं में भाग नहीं लेते थे। अपने चरित्र को अपनी योग्यता से अधिक महत्त्व देते थे। एक दिन शिक्षा विभाग के इन्स्पेक्टर जाइल्स उनकी कक्षा में आये और उन्होंने विद्यार्थियों को पाँच-पाँच शब्द लिखने को कहा। मोहन दास ने केटल (**Kettle** केतली) शब्द गलत लिखा। कक्षाध्यापक ने बगल वाले की स्लेट से देखकर सही शब्द लिखने का संकेत किया, किन्तु उन्होंने नकल नहीं की। स्कूल से लौटकर वह सीधे अपने घर के बगीचे की देखभाल करने लग जाते। स्कूली किताबों के अलावा और पुस्तकें पढ़ने का उन्हें शौक नहीं था। लेकिन एक दिन पिताजी की खरीदी हुई 'श्रवण भक्ति' नामक किताब पढ़ी, और 'हरिश्चन्द्र' नाटक देखा तो

उससे माता-पिता के प्रति निष्ठावान एवं सत्य का अनुगामी होने की प्रेरणा ली, जिसका उनके जीवन-व्यवहार पर अमिट असर रहा।

विवाह

मोहनदास का विवाह तेरह वर्ष की उम्र में पोरबन्दर के एक व्यापारी गोकुलदासजी की पुत्री कस्तूरबा के साथ हुआ। उस समय वे हाईस्कूल में पढ़ते थे। विवाह के कारण पढ़ाई का नुकसान हुआ। सभी गुणों से परिपूर्ण होने पर भी मोहनदास अपने एक सहपाठी के साथ चोरी-छिपे मांस भक्षण करने लगे और अपने काका द्वारा फेंके बीड़ी के टुकड़े पीने लगे। उससे तकलीफ हुई तो धूम्रपान से किनारा किया। उन्हीं दिनों एक चोरी का भी दुःखद प्रसंग घटा। उसका उल्लेख गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में इस प्रकार किया है: "यह चोरी मेरे मांसाहारी भाई के सोने के कड़े के टुकड़े की थी। उन्होंने कोई पच्चीस रुपये कर्ज लिये थे, जिन्हें सोने के कड़े में से सोना काटकर चुकाया।" किन्तु मोहनदास की आत्मा इस अपराध बोध को न सह सकी। एक पत्र में सारी बात लिखकर उन्होंने पिताजी को सूचित कर माफी माँगी। पिता-पुत्र दोनों रोये। पुत्र ने रोकर पश्चाताप किया और पिता ने आँसू बहाते हुए क्षमा किया। पिताजी की मृत्यु के पश्चात् १८८७ में उन्होंने मैट्रीकुलेशन की परीक्षा पास की।

वकालत की शिक्षा

आगे विलायत जाकर कानून की शिक्षा प्राप्त करने की तैयारी की। उसके लिए मोहनदास ने बेचरजी स्वामी (जैन संत) से मांस, मदिरा और परस्त्री से दूर रहने की प्रतिज्ञा ली तो माता से भी इंग्लैण्ड जाने की अनुमति मिली। लेकिन जाति के बड़े बूढ़ों की पंचायत ने 'इंग्लैण्ड जाने को हिन्दू धर्म के खिलाफ मानकर रोकने की असफल कोशिश' की। ४ सितम्बर १८८८ को बम्बई बन्दरगाह से स्टीमर में बैठे और २८ अक्टूबर १८८८ को लन्दन पहुँचे। वहाँ उन्हें शाकाहारी भोजनालय खोजने के लिए काफी मेहनत करनी पड़ी। फिर सुबह का भोजन अपने हाथ से, दोपहर का भोजन बाहर और शाम को कोको के साथ खाकर काम चलाने लगे। गांधीजी ने लिखा है कि "उस समय कानून की पढ़ाई आसान थी। परीक्षा की पुस्तकें भी नियत थीं; लेकिन उन्हें कदाचित् ही कोई पढ़ता था। रोमन लॉ और इंग्लैण्ड के कानून पर छोटी-छोटी टिप्पणियाँ लिखी हुई मिलती थीं। उन्हें पढ़कर ही लोग पास होते थे। किन्तु मैंने मूल पुस्तकें खरीदीं और पढ़कर परीक्षा पास की।" कानूनी शिक्षा प्राप्त कर सन् १८९१ में वे भारत लौटे और बम्बई के वरिष्ठ न्यायालय में वकालत के लिए अपना नाम दर्ज करवाया।

दक्षिण अफ्रीका का कुली बैरिस्टर

काठियावाड़ के न्यायालय में वकालत की अनुमति गांधीजी को मिली, लेकिन वहाँ छोटे-छोटे राजाओं और उनके कृपापात्रों का भ्रष्ट जोड़-तोड़ वाला वातावरण उन्हें

रास नहीं आया। उसी समय उनके समक्ष दादा अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी में एक वर्ष के लिए दक्षिण अफ्रीका में अतिथि के रूप में जाकर काम करने का प्रस्ताव आया। इसके अन्तर्गत पूरे खर्च के साथ एक सौ पांच पौण्ड पारिश्रमिक था। वहाँ चलने वाले मुकदमों में सलाह देना और कंपनी की उन्नति के लिए अन्य दूसरे विषयों पर पत्र-व्यवहार करना था। गांधीजी ने प्रस्ताव स्वीकार किया और अप्रैल १८९३ में स्टीमर से नेटाल के बंदरगाह, जिसको डरबन कहते हैं, पहुँचे। सेठ अब्दुल्ला उन्हें डरबन की कचहरी दिखाने ले गये। वहाँ यूरोपियन मजिस्ट्रेट ने उन्हें पगड़ी उतारने का हुक्म दिया। हुक्म मानने से इन्कार कर वे अदालत के कमरे से बाहर आ गये। हिन्दुस्तानियों को अंग्रेज कुली कहते थे। उस कारण गांधीजी को 'कुली बैरिस्टर' का खिताब मिला। भारतीय व्यापारी कुली व्यापारी कहलाते थे। उनके प्रति अंग्रेज जिस ढंग से व्यवहार करते थे, उसमें एक प्रकार की तुच्छता नजर आती थी, जो गांधीजी को चुभती थी। डरबन की परिस्थितियों का अवलोकन करने के पश्चात् दादा अब्दुल्ला ने उन्हें प्रिटोरिया जाने की सलाह दी। वहाँ जाते समय रास्ते में उनकी गाड़ी मैरित्सबर्ग पहुँची, तो उनसे पहले डब्बे से आखिरी डब्बे में जाने को कहा गया। इन्कार करने पर बेहूदगी से उनको डब्बे से नीचे उतार दिया। ठंड से ठिठुरते हुए रात उन्होंने मैरित्सबर्ग स्टेशन के अंधेरे वेटिंग रूम में बितायी। सवेरे एक लम्बा शिकायती पत्र जनरल मैनेजर को भेजा और दादा अब्दुल्ला को भी सूचना दी। रात हुई, ट्रेन आयी और उससे गांधीजी चार्ल्स टाउन पहुँचे। वहाँ से जोहान्सबर्ग के लिए घोड़े की सिरकम करनी होती थी। भारतीय होने के कारण पहले तो सिरकम पर अंग्रेज गोरा उन्हें बैठने नहीं दे रहा था, किन्तु अन्य यात्रियों के कहने पर उन्हें हाँकनेवाले के पास जगह दी गयी। जब गाड़ी पार्डीकोप पहुँची तो एक गोरे अधिकारी ने गांधीजी को उस जगह से भी हटाकर पैरों के पास बैठने को कहा। वे अपनी जगह से नहीं हिले। गोरा अधिकारी अपनी अवज्ञा कैसे सहता? उसने गांधीजी को पीटना शुरू कर दिया। यदि गाड़ी के दूसरे मुसाफिर बीच-बचाव न करते, तो गोरा गांधीजी को गाड़ी से गिराकर ही चैन लेता। जोहान्सबर्ग से प्रिटोरिया के लिए गाड़ी का पहले दर्जे का टिकट भी स्टेशन मास्टर से कहा-सुनी के बाद मिला। फिर वहाँ पहुँचने पर यूरोपीय ग्राहकों की रजामन्दी के पश्चात् होटल वाले ने गांधीजी को रहने और भोजनालय में भोजन करने दिया।

प्रिटोरिया के सेठ तैयब साहब और नेटाल के दादा अब्दुल्ला के बीच मुकदमा चल रहा था। गांधीजी ने तथ्यों का अध्ययन कर समझ लिया कि अदालती लड़ाई में दोनों ही फरीकैन तबाह हो जायेंगे। इसलिए उन्हें आपस में झगड़ा निपटा लेने की सलाह दी। काफी बहस के बाद वे गांधीजी की सलाह मान गये। गांधीजी को इससे बड़ा सुख मिला और लिखा : "मुझे जान पड़ा कि वकील का कर्त्तव्य फरीकैन के बीच में खड़ी हुई खाई को भरना है।" मुकदमे की समाप्ति के उपरान्त कुली बैरिस्टर डरबन लौट गया।

अहिंसक धर्मयुद्ध

डरबन में 'नेटाल मरकरी' नामक समाचार पत्र में 'इण्डियन फ्रेंचाइज' बिल के बारे में छपा, जिसके अनुसार भारतीय दक्षिण अफ्रीका में कौंसिल के सदस्यों को चुनने के अधिकार से वंचित हो जाते। गांधीजी ने इस बिल का विरोध किया और विरोध में खड़े होने वालों को संगठित रखने के लिए २२ मई १८९४ को 'नेटाल इण्डियन कांग्रेस' की स्थापना की। सरकार के पास बिल विरोधी चिट्ठियाँ और अर्जियाँ भिजवायीं। अखबारों में भी लिखा। फिर भी बिल पास हो गया। उसी समय दक्षिण अफ्रीका के उपनिवेश में भारतीयों की बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए नेटाल के गोरों के प्रस्तावानुसार जिन भारतीय मजदूरों की दक्षिण अफ्रीका में रहने की अवधि समाप्त हो गयी, उनसे ३ पौण्ड कर लेने की घोषणा कर दी गयी। वह हर मजदूर पर बोझ था। उसे हटाने के लिए गांधीजी ने अहिंसक धर्म युद्ध छेड़ा। बीस साल के दौरान अनेक लोग गोली का निशाना बने और दस हजार से अधिक भारतीय जेल गये।

जुलाई १८९६ में भारत लौटकर गांधीजी ने 'हरीपुस्तिका' लिखी, जिसमें दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की स्थिति का वर्णन था। राष्ट्रव्यापी दौराकर गांधीजी फिरोजशाह मेहता, गोपालकृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक सहित जनता को भी अपेक्षित जानकारी दे ही रहे थे कि दादा अब्दुल्ला का तार मिला। उसमें डरबन के लिए लिखा था : "पार्लियामेंट जनवरी में शुरू होगी, जल्दी लौट आइये।" गांधीजी स्टीमर में थे, तभी नेटाल वालों को यह सूचना मिली कि गांधीजी ने भारत में यह प्रचार किया है कि नेटाल के भारतीयों को लूटा-खसोटा जाता है। उनके साथ जानवरों का-सा व्यवहार होता है और कोई सुनवाई नहीं होती। इससे नेटाल के गोरों ने २३ दिन गांधीजी को स्टीमर से उतरने ही नहीं दिया। फिर उतरे तो उन पर कंकड़ों, पत्थरों एवं सड़े हुए अंडों की वर्षा की। किसी ने पगड़ी उतार ली तो किसी ने लातों-घूंसों से मारा। गांधीजी बेहोश होकर गिर पड़े। पुलिस के पहुँचने से उनकी जान बची। उपनिवेश मंत्री चेम्बरलेन ने गांधीजी पर हमला करने वालों को गिरफ्तार कर मुकदमा चलाने को कहा। लेकिन गांधीजी ने जाहिर किया कि किसी पर मुकदमा न चलाया जाय, क्योंकि गलतफहमी के कारण क्रोधवश गोरों ने यह सब किया।

बोअर-युद्ध में गोरों की मदद

अंग्रेजों के साथ २० अक्टूबर १८९९ को बोअरों का युद्ध आरंभ हुआ। बोअर लोग बहुत बहादुर थे। उनकी स्त्रियाँ भी युद्ध भूमि में वीरता से लड़ती थीं। जिस समय ब्रिटिश सरकार संकट में थी, युद्ध में घायलों की सेवा करने की गांधीजी ने अनुमति प्राप्त की।

अंग्रेजों ने बोअर युद्ध की विजय में भारतीयों के योगदान की प्रशंसा की और उन्हें साम्राज्य का सुपुत्र कहा। गांधीजी की प्रशंसा में गीत भी लिखे।

बोअर युद्ध के कारण ट्रांसवाल उजड़ गया। उस पर अंग्रेजों का कब्जा होते ही यह नियम लागू हुआ कि भागे हुए ट्रांसवालवासी सरकारी परवाना लेकर ही वहाँ आ सकते हैं। भारतीयों के लिए यह परवाना प्राप्त करना बड़ा कठिन था। डरबन के पुलिस सुपरिन्टेण्डेंट अलेक्जेंडर की सहायता से परवाना प्राप्त कर गांधीजी प्रिटोरिया के लिए रवाना हुए। १९०४ में उन्होंने 'इंडियन ओपीनियन' साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया और डरबन से १३ मील दूर फिनिक्स आश्रम की स्थापना की। १९०६ में जुलू विद्रोह हुआ। तब भी युद्ध में घायलों की सेवा की। सेवा सम्मानार्थ अंग्रेजों ने गांधीजी को सार्जेण्ट मेजर का अस्थायी पद दिया।

सत्याग्रह की सफलता

२२ अगस्त १९०६, ट्रांसवाल गजट द्वारा मालूम हुआ कि ट्रांसवाल में हर भारतीय पुरुष, स्त्री और आठ या उससे ऊपर की उम्र के बच्चों के लिए पंजीकरण करवाना और परवाना लेना आवश्यक है। उसमें प्रत्येक प्रार्थी को अपनी सारी अंगुलियों और अंगूठे के निशान देने होंगे। उसका शान्तिपूर्ण विरोध करने का तय किया, जिसका नाम सत्याग्रह रखा गया। गांधीजी और मि.हाजी बजीर अली उस परवाने के काले कानून का विरोध करने इंग्लैण्ड गये। वहां उपनिवेश मंत्री और भारत मंत्री – दोनों ने शिष्ट मंडल की बातें सुनीं। लेकिन २१ मार्च १९०७ को ट्रांसवाल की धारा सभा ने स्वतंत्र सरकार की हैसियत से उस खूनी कानून को पास कर ३१ जुलाई १९०७ तक नया परवाना लेना आवश्यक कर दिया। स्वयंसेवकों ने तब सत्याग्रह शुरू किया। परवाना दफ्तरों के बाहर धरना देने वाले स्वयंसेवक परवाना लेने आये लोगों को समझाबुझाकर लौटाने लगे। पुलिस स्वयं सेवकों को पकड़ती तो वे खुशी–खुशी गिरफ्तार हो जाते। गिरफ्तार कर गांधीजी और उनके साथी जोहान्सबर्ग जेल पहुंचा दिये गये। रिहा होने पर उन्होंने जोहान्सबर्ग से ९२ मील दूर ११०० एकड़ भूमि ली और उसमें टालस्टॉय आश्रम स्थापित किया। आश्रम में स्वावलंबन और परिश्रम को आधार मानने वाले स्वयंसेवकों ने सत्याग्रह की तात्त्विक दृष्टि समझी और वे बेझिझक गिरफ्तारी देने लगे, जिससे सरकार ने भारतीयों की मुख्य मांग ३ पौंड कर हटाया और भारतीय विवाह को वैध माना। इस तरह सत्याग्रह को सफल बनाकर १९१३ में गांधीजी भारत लौटे तो भारत सरकार ने उन्हें 'केसरे हिन्द' पदक प्रदान किया।

शोषण के विरुद्ध भारत में मोर्चा

भारत के विभिन्न क्षेत्रों का अवलोकन कर गांधीजी ने अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की। दिसम्बर १९१६ में वे भारतीय राष्ट्रीय

कांग्रेस अधिवेशन में शामिल होने लखनऊ पहुँचे। वहाँ चम्पारण के एक गरीब किसान राजकुमार ने अपने यहाँ नील की खेती करने वाले किसानों की दयनीय दशा बताकर गांधीजी से अनुरोध किया कि वे स्वयं चंपारन पहुँचकर नील की खेती करने वालों की मजबूरी देखें। गांधीजी ने वही किया और किसानों की अपनी ही भूमि के ३/२० हिस्से में नील की खेती करने की बाध्यता देखी और स्पष्ट अभिमत दिया तो ४ जून १९१७ को लेफ्टिनेंट गवर्नर सर एडवर्ड गेट ने वार्ता के लिए उन्हें राँची बुलाया। वार्ता के उपरान्त गठित समिति ने जांच रिपोर्ट में तीन गठिया प्रथा उठा लेने की सिफारिश की। गोरों के विरोध के बावजूद सरकार ने समिति की सिफारिश पर वह प्रथा समाप्त कर दी।

गुजरात में सूखा के कारण फसल नष्ट हो गयी, किसानों के लिये लगान देना संभव नहीं रहा। खेड़ा में किसानों ने लगान माफ कराने के लिए आन्दोलन किया। गांधीजी के साथ सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्त्व में हुआ यह आन्दोलन काफी कड़ाई करने के बावजूद नहीं रुका तो सरकार की ओर से घोषणा की गयी कि अच्छी हैसियत वाले जो किसान लगान दे सकते हैं, उन्हीं से लगान वसूल किया जाय। शेष किसानों का लगान माफ हो गया। 'बारडोली सत्याग्रह' की सफलता ने शोषण के विरुद्ध मोर्चा लेने का अहिंसक रास्ता सिखाया।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम

१९१८ में जर्मन आक्रमण से अंग्रेजी हुकूमत भयभीत थी। वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने युद्ध के बारे में विचार विमर्श के लिए दिल्ली में एक सभा आयोजित की, जिसमें भारतीय नेताओं से सैनिक-सहायता मांगी। गांधीजी ने भारतीयों को समझाकर अंग्रेजों को सहायता दी। लोगों को फौज में भर्ती होने के लिए राजी करना उतना आसान नहीं था, जितना कि किसानों को सत्याग्रह कर जेल जाने के लिए तैयार करना साबित हुआ था। प्रथम विश्व युद्ध में जर्मनी की हार हुई और अंग्रेज जीते। तन-धन से अंग्रेजों की मदद करने वाले गांधीजी तब निराश हुए, जब गोरी सरकार भारतीयों को उत्तरदायी शासन देने का वादा पूरा करने से मुकर गयी। मार्च १९१९ में उत्तरदायी शासन की आवाज उठाने वाले भारतीयों को जलियांवाला बाग में बेमौत मारा। इससे व्यथित हो गांधी ने 'कायर डायर की गोली से हुई लाल भूमि' में पहुँचकर राजनीतिक अधिकार की प्राप्ति के लिए हो रहे आन्दोलन को राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम बना दिया। तुर्की का सुल्तान, जो खलीफा माना जाता था, को कायम रखने का वचन देकर भी अंग्रेजी हुकूमत के मुकर जाने से मुसलमान भी खिलाफत आन्दोलन के चलते राष्ट्रीय संग्राम के अंग बने। १४ मई १९२० को गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव किया, जिसे खिलाफत सभा और राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वीकारा। उस प्रस्ताव के अनुसार सरकारी स्कूलों, सरकारी नौकरियों का बहिष्कार हुआ। वकील न्यायालय से दूर रहे एवं विदेशी वस्त्रों की होली जली। सरकार

ने राजद्रोह का आरोप लगाकर गांधीजी को जेल में डाल दिया। वे जेल से छूटे, तब तक हिन्दू-मुस्लिम एकता भंग हो गयी। हिन्दू-मुसलमानों के बीच हुए दंगों को शान्त करने के लिये १८ सितम्बर १९२४ को गांधीजी ने २१ दिन का उपवास किया।

नमक सत्याग्रह

हवा और पानी के बाद शायद नमक ही जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता है। गरीबों के लिए तो यह मसाला है। मवेशी भी बगैर नमक के नहीं रहते। इसलिए हर आदमी से वसूले जाने वाले नमक कर के विरोध में गांधीजी ने दांडी मार्च आरंभ किया। १२ मार्च १९३० को नमक कानून तोड़ने के लिए अहमदाबाद से चलकर वे २५ अप्रैल १९३० को दांडी पहुँचे। वहाँ समुद्र किनारे नमक बनाया। उन्हीं की भाँति देशभर में हजारों स्त्री-पुरुषों ने नमक-कानून तोड़ा। सरकार ने दमनचक्र चलाकर एक के बाद एक-एक कर सभी नेताओं को गिरफ्तार कर बिना मुकदमा चलाये जेलों में बंद कर दिया। ४ अप्रैल १९३० को गांधीजी ने सावधान किया कि निर्दोष सत्याग्रहियों के हाथ से बलपूर्वक नमक छीनने में शुद्ध बर्बरता है और भारत का अपमान भी। सत्याग्रही पूर्णतः शान्त और अहिंसक बने रहे, हालांकि सरकारी अधिकारियों ने सारी सीमाओं का अतिक्रमण किया। अब यदि पुलिस ने स्त्रियों और बच्चों पर हाथ डाला तो सारे भारत की भावना भड़क सकती है और देश के सभी लोग इन स्त्रियों और बच्चों के समान कष्ट सहने के लिए आगे आ जायेंगे। वही हुआ। आजादी के दीवाने सत्याग्रह कर लाखों की संख्या में जेल गये।

भारत छोड़ो आन्दोलन

१९३५ के भारत सरकार अधिनियम के तहत १९३७ में प्रान्तीय स्वायत्तता मिली। लेकिन ३ सितम्बर १९३९ को वायसराय ने बिना किसी की सलाह के भारत को अंग्रेजों की ओर से द्वितीय विश्वयुद्ध में शामिल कर लिया। उसके विरोध में कांग्रेस की सरकारों ने त्याग पत्र दिये और गांधीजी के नेतृत्त्व में १७ अक्टूबर १९४० से व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू हुआ। २५ हजार से अधिक सत्याग्रहियों को जेल भेजने के बाद गोरी सरकार सहमी। वाइसराय को लगा कि बंदूकों और बलवा को दबाने की ताकत से चूल्हा, चक्की, चरखा वाले सत्याग्रहियों को दबाना संगत नहीं है। सितम्बर १९४१ में सारे सत्याग्रही रिहा कर दिये गये।

अगस्त १९४२ में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारंभ करते हुए गांधीजी ने 'करो या मरो' का आह्वान किया। अंग्रेजी हुकूमत ने रातोरात गांधीजी सहित लाखों भारतीयों को गिरफ्तार किया, मगर उन्हें बिना शर्त रिहाकर १२ अगस्त १९४६ को भारत की अस्थायी सरकार बनायी। वाइसराय ने मुस्लिम लीग को पाकिस्तान देने और कांग्रेस को विभाजन स्वीकार

करने को मनाया। फलतः १४-१५ अगस्त १९४७ को पाकिस्तान हिन्दुस्तान की सरकारें आजादी का जश्न मना रही थीं तो गांधीजी अविभाजित भारत के विस्थापितों के जख्मों पर मरहम लगाने तथा क्रिया-प्रतिक्रियाजन्य भड़की आग को बुझाने में लगे थे। उन्होंने विभाजन से होने वाली अपनी परेशानी वाइसराय को बतायी तो वे बोले कि कांग्रेस और लीग ने जो मांगा, वही दिया गया है।

गांधीजी ने देशवासियों से कहा कि मैं खुशी नहीं मना सकता, मगर आपसे यह भी नहीं कह सकता कि आप खुशी न मनायें। आखिर सब काम मेरी मर्जी के मुताबिक थोड़े ही होते हैं। मैं तो हिन्दुस्तान के टुकड़े करना भी नहीं चाहता था, मगर हो गये। जब हो ही गये तो उसके लिये रोना क्या?

मरे हुए तो जिलाये नहीं जा सकते, पर जिन्दों के लिये काम करें

लोग कहते हैं कि मुझे हिमालय चला जाना चाहिए, लेकिन मेरा हिमालय तो यहीं है। मैं शान्ति चाहता हूँ, नहीं तो उस अशान्ति में मर जाना चाहता हूँ। मरे हुए लोग तो जिलाये नहीं जा सकते, लेकिन जिन्दा लोगों के लिए तो काम कर ही सकते हैं। अगर हम ऐसा नहीं करते तो हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के नाम पर हमेशा के लिए कालिख पुत जायेगी। मुझे तसल्ली जफरुल्ला साहब (पाकिस्तान के विदेश मंत्री) के संयुक्त राष्ट्रसंघ में दिये गये भाषण से हुई, जिसमें उन्होंने साफ-साफ शब्दों में कहा है कि "दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुंस्तानियों के साथ वही बरताव नहीं किया जाता, जो गोरों के साथ किया जाता है।" अगर हिन्दुस्तान के बाहर हिन्दू और मुसलमान एक आवाज में बोल सकते हैं तो यहाँ भी और पाकिस्तान में भी, वे जरूर ऐसा कर आज की मुसीबतों से पार हो सकते हैं। (१६ नवम्बर १९४७)

मुसीबतों से मुक्ति दिलाने की आकांक्षा रखने वाले मसीहा पर ३० जनवरी १९४८ को बिड़ला भवन में आयोजित प्रार्थना सभा में जाते समय नाथूराम गोडसे ने गोलियाँ दाग दीं। गांधीजी हे राम! कहते हुए इस संसार से सदा के लिये विदा हो गये। उनके जीवन-दर्शन से प्रभावित होकर विश्वविख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने कहा है कि "आने वाली पीढ़ियाँ शायद मुश्किल से ही विश्वास कर सकेंगी कि गांधी जैसा हाड़-मांस का पुतला कभी इस धरती पर हुआ होगा। वे इन्सानों में एक चमत्कार थे।"

गाँधीवादी चिन्तन और आज का परिवेश

जड़-चेतन गुन दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार।।

सृष्टि में दो तत्व हैं। जड़ और चेतन। जड़ में चेतना नहीं होती। चेतनावान चिन्तन करता है। वह चिन्तन स्वान्तःसुखाय होता है, बहुजन हिताय होता है और सर्वजनहिताय भी होता है। स्वान्तःसुखाय चिन्तन करने वाले व्यक्ति को केन्द्र में रखते हैं, बहुजन हिताय चिन्तन करने वाले अनुकूल समूह को केन्द्र में रखते हैं और सर्वजन हिताय चिन्तन करने वाले सर्वमय हो जाते हैं, जिससे सर्वोदय होता है। गाँधीवादी चिन्तन का मूलाधार सर्वोदय है। भारतीय संस्कृति इसी को महत्व देती है और मानती है :

सर्वेऽत्रसुखिनः सन्तु सर्वेसन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।।

सब सुखी हों, सभी स्वस्थ रहें, सबका कल्याण हो - यह सभी चाहते हैं, किन्तु चाह के अनुरूप राह गाँधीजन बनाते हैं और तद्नुरूप चाल-चलन, खान-पान, व्यापार-व्यवहार, शिक्षा-दीक्षा का परिवेश बनाते हैं। इससे संघर्ष की जगह सहयोग को प्रश्रय मिलता है, संहार की जगह सृजन की प्रेरणा होती है और युद्ध की जगह शान्ति फलती-फूलती है। शुद्ध साध्य के लिए शुद्ध साधन अपनाये बिना शान्ति टिकती नहीं, यह विश्व-विकास-यात्रा से सिद्ध हो चुका है। वामन से विराट् की दिशा में बढ़ रही विकास यात्रा की सर्वोत्तम उपलब्धि सर्वोदय साधना है।

स्वान्तःसुखाय साधना करने वालों का आधार केन्द्र निजी जीवन है। वे सन्त, तपस्वी, ज्ञानी और परोपकारी होते हैं। बहुजन हिताय साधना करने वाले समाज सेवक, देशभक्त और परमार्थ प्रिय रहते हैं। उनके क्रिया-कलापों में द्वैत बना रहता है। लेकिन सर्वजनहिताय साधना करने वाले अद्वैतभाव से समाज जीवन को महत्व देते हैं और मानते हैं कि हमारे जीवन पर समाज का अधिकार है। हम सिर्फ अपने शरीर में ही नहीं रहते, वरन् सारे शरीरों में रहते हैं। गाँधीजी ने कहा भी था कि हमारी नसों में हिन्द में हुए अनेक वीर और पवित्र पुरुषों का खून बहता है। उन्हीं की हड्डियों से हमारी हड्डियाँ बनी हैं। भूतकाल में हुए और भविष्य में होने वाले सारे हिन्दियों से हमारा सम्बन्ध है। इसी तरह सारी सृष्टि से हमारा रिश्ता है।

गाँधीवादी विचारकों के जीवन का लक्ष्य सत्य, जीवन की पद्धति, संयम और जीवन का कार्य सेवा है। सामूहिक श्रमदान, सामूहिक सफाई, सामूहिक कताई, सामूहिक प्रार्थना के साथ कृषकों, मजदूरों, पिछड़ों, बीमारों आदि की सहायता कर रचनात्मक प्रवृत्तियों को परिणामप्रद बनाना सेवा है। जहाँ कहीं कोई दुःखी दिखाई पड़ता है, तो गाँधीजन तब तक चैन से नहीं रह पाते, जब तक उसे राहत न पहुँचे। उन्हें राज्य नहीं चाहिए, स्वर्ग और अपवर्ग भी नहीं चाहिए। चाहिए मात्र दुःखियों के दुःख दूर करने की अनुकूलता। भूदान मूलक, ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति से वही किया गया, जिससे भूमिहीनों को भूमि मिली, साधनहीनों को साधन मिले, बीमारों को चिकित्सा मिली, अशिक्षितों को शिक्षण मिला एवं स्वार्थ से परार्थ एवं परार्थ से परमार्थ साधने की संभावनाएँ स्पष्ट हुईं।

भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था है। लोकतंत्र का आधार दल हैं, जो जनता को अनेक घटकों में विभाजित करते हैं, और ऐसे कानून बनाते हैं जिससे सत्ता व सम्पत्ति पर चन्द लोगों का अधिकार हो जाता है, जबकि गाँधीजन 'सबै भूमि गोपाल की' और 'सम्पत्ति सब रघुपति के आही' मानते हैं। वे कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को जीवित रहने के लिए आवश्यक साधन पाने का अधिकार है। किसी देश की सुव्यवस्था की पहचान यह नहीं है कि उसमें कितने करोड़पति हैं, बल्कि यह है कि देश में कोई कंगाल तो नहीं है, जिसे जीवन निर्वाह के साधन सुखपूर्वक न मिले। गाँधीवादी चिन्तन को न समझने वाले सत्ता व सम्पत्तिवानों ने विकास की जो परिभाषा बनायी है, उसके अनुसार जो व्यक्ति जितने भोग साधन जुटाता है, वह उतना ही विकसित माना जाता है। संसार के देशों को विकसित, विकासशील और अर्धविकसित व पिछड़े देशों में विभक्त करने की यह कसौटी है। भोग साधनों की बहुलता ही विकास व बड़प्पन का आधार हो जाने से येन-केन-प्रकारेण सत्ता-सम्पत्ति पर अधिकार करने की होड़ ने सेवा, सादगी, सदाचार, संयम को मूल्यहीन बना दिया है, जिसका खामियाजा सभी जीव-जन्तु, नदी-पर्वत, वृक्ष-वनस्पति, सृष्टि-स्रष्टा तक भोगने को विवश हैं। इसी विवशता से छुटकारा दिलाने हेतु गाँधीजन आर्थिक दृष्टि से गाँव को अपना विश्व और सांस्कृतिक दृष्टि से विश्व को गाँव मानकर अभाव, अन्याय, अज्ञान, अशान्ति का निराकरण करते हैं। व्यक्तिवादी चिन्तक जो काम राज्यशक्ति से करवाते हैं, वे ही काम गाँधीजन लोकशक्ति से करते हैं। राज्यशक्ति सत्ता आधारित होती है, लोकशक्ति सेवा आधारित। राज्यशक्ति नागरिक अभिक्रम को नियंत्रित करती है, लोकशक्ति नागरिक अभिक्रम की प्राकृतिक वातावरण व सामाजिक पर्यावरण के साथ संगति बिठाती है, जिससे हर नागरिक को लोकतांत्रिक व्यवस्था में अपनी शारीरिक, आध्यात्मिक, सामाजिक ऊर्जा का उपयोग करने का पर्याप्त अवसर मिलता है। लोग मिल बैठकर

कोर्ट-कचहरी गये बिना अपने झगड़े खुद सुलझाते हैं। शान्ति सेना से जुड़े युवक-युवती अशान्ति शमन करते हैं, जिससे पुलिस और सेना पर निर्भरता नहीं रहती। सेना बाहरी आक्रमण से रक्षण करती है, पर शान्ति सेना आर्थिक आक्रमण से भी बचाती है।

जनसंख्या वृद्धि, बढ़ती नगरीय समस्या आदि को ध्यान में रखकर बहुत पहले ही गाँधीजी ने सचेत किया था कि कई अरब आदमी शहरों और महलों में सुख से नहीं रह सकते और न वे एक-दूसरे का खून करके ही रह सकते हैं। सुखी रहने के लिए उन्हें अपने जीवन का रहन-सहन और तौर-तरीका बदलना होगा। गाँवों को नवजीवन देने के लिए खेती, गोपालन एवं अन्य सारे ग्रामीण उद्योगों को संरक्षित/संवर्धित करना होगा। गाँधीजन इसी कारण गाँवों में पहुँचकर गाँव वालों को समझाते हैं कि आप अपने गाँव की ग्रामसभा बनायें। गाँव का हर वयस्क उसका सदस्य हो। सर्वसम्मति से दल, जाति, सम्प्रदाय की भावना से ऊपर उठकर गाँव के हित की योजना बनायें और उसे क्रियान्वित करें। सरकार एक बार सड़क, पाखाना, स्कूल आदि बना देगी, लेकिन उसकी देखभाल तो ग्रामजनों को ही करनी होगी। ग्राम शक्ति संगठित करने से ही यह काम होगा।

गाँव के हर परिवार में शौचालय बने। गाँव की माँ-बहनों को सड़क के किनारे शौच करने बैठना पड़े, इससे नारी जाति का अपमान तो होता ही है, गंदगी भी बढ़ती है। शौचालय बनाने के लिए सरकार अनुदान देती है। ग्रामजन कोशिश कर हर परिवार में शौचालय बना लें। इसी तरह किसी निर्धारित जगह ईंट, घास आदि डालकर पेशाब घर बना लें तो जहाँ-तहाँ पेशाब करना बन्द हो जायेगा।

हर परिवार को पीने के लिए स्वच्छ पानी मिलना चाहिए। सरकार चांपाकल लगवाती है। सबसे उपेक्षित लोगों के घर के आगे चांपाकल लगे और कोई न कोई उसकी देखभाल की जिम्मेवारी ले तो सबको पानी मिलेगा। वरना चांपाकल बेकार ही पड़ा रहेगा और सरकारी पैसा खर्च होने के बाद भी गाँव वालों को पीने का पानी दूर-दूर से लाना होगा या खरीदकर पीना होगा।

हर परिवार का कम से कम एक सदस्य गाँव का धंधा करे। पहले गाँव की जरूरतें गाँव वाले पूरी कर लिया करते थे। अब भी वैसा किये बिना गाँव उजड़ जायेंगे। उन्हें संरक्षित रखने हेतु कृषि, बागवानी, लुहारी, सुथारी, बायोगैस, गोबरगैस, जैविक खाद उत्पादन, चर्मोद्योग, पशुधन रक्षण, सामाजिक वानिकी एवं वृक्षारोपण पर ध्यान दें।

गाँव वालों की शान्ति सेना बनायें, जो एक घंटे की पाठशाला चलाकर लोगों को शिक्षित करे। चोर-डकैतों से रक्षण दे। शराब, गाँजा आदि मादक पदार्थों को गाँव में आने से रोके। अगर गाँव वालों के बीच कहीं झगड़ा हो तो उसे सुलझा दे, ताकि

कोर्ट कचहरी के चक्कर में गाँव की दौलत बरबाद न हो। गाँव की लक्ष्मी, गाँव की सरस्वती, गाँव की दुर्गा रक्षित होने से ही भारत रक्षित होता है, क्योंकि भारतमाता ग्रामवासिनी है।

भारतीय जनता पर साधु-संतों का प्रभाव है। वे आत्म साधना करते हैं। सुबह जल्दी उठते हैं। ध्यान, योग, स्वाध्याय में समय लगाते हैं, वह ठीक है, लेकिन उससे समाज तभी लाभान्वित हो सकता है जब ध्यान, योग, स्वाध्याय आदि का सामाजिक मूल्य हो, इसलिए साधु-सन्तों से गाँधीजन अनुरोध करते हैं कि वे लोगों को सिखायें कि रोज सबेरे जल्दी उठो। मन और इन्द्रियों को वश में रखो। सिनेमा देखकर विषयासक्त मत बनो। रात को प्रगाढ़ निद्रा लो। इसी तरह मन्दिरों में पूजा-अर्चा करने वालों से कहते हैं कि आप भगवान का श्रृंगार करते हैं, और छप्पन भोग लगाते हैं। मन्दिर में विराजमान भगवान उससे उदासीन रहते हैं, जबकि समाज में खड़ा दरिद्र नारायण नंगा और भगवान भूखा है। इसी कारण आपकी भक्ति मात्र भावना बनकर रह जाती है। वह सामाजिक तभी होगी, जब समाज में कोई भूखा या नंगा नहीं रहेगा। धर्म, भक्ति, उपासना, साधना का समाजीकरण होने से ध्वनि प्रदूषण, सार्वजनिक स्थानों का अतिक्रमण, बिजली का अपव्यय रोकने में मदद मिलेगी और सामुदायिक चित्त, चिन्तन, चरित्र में धार्मिकता संक्रमित होगी। धार्मिकता को सामाजिक मूल्य बनाये बिना धर्म कर्मकाण्ड और सम्प्रदाय में सिमटकर रह जाता है और समाज को धारण करने की उसकी क्षमता घटती है।

इस तरह सृष्टि की एकता, जीवन की सम्पन्नता और लोकशक्ति के मेल के प्रति प्रतिबद्ध गाँधीवादी चिन्तन, आध्यात्म, विज्ञान और लोकतंत्र का उज्जवल पक्ष सामने लाता है एवं उनमें निहित अन्तर्विरोध घटाता है। उसकी अनदेखी होने से गाँधी, विनोबा, जे. पी. के साथ वेद, आगम, त्रिपिटक की परंपरा भी पड़ोस की हिंसा में फंसकर रह जायेगी। आतंक, अशान्ति व आपाधापी की छाया में जी रहे लोग जितनी जल्दी यह बात समझ लें, उतनी ही जन-गण की भलाई है। क्योंकि 21वीं सदी के समक्ष उपस्थित चुनौतियों को स्वीकारने की हिम्मत व तकनीक गाँधीवादी चिन्तन देता है, जिसका लाभ हर आयु वर्ग के, हर धर्म सम्प्रदाय के, हर सरकारी-असरकारी संगठनों के लोग उठा सकते हैं और समवेत स्वरों में गा सकते हैं –

सुखी रहें सब जीव जगत् के, कोई कभी न घबराये।
वैर पाप अभिमान छोड़, जग नित्य नये मंगल गाये।।

●

गाँधी-शिक्षा एवं शिक्षा-जगत् की परीक्षा

महात्मा गाँधी दुनिया के ऐसे पहले शिक्षा शास्त्री हैं, जिन्होंने आजाद भारत की नई शिक्षा का विचार बीज बोकर कार्य पैदा किया, कार्य का बीज बोकर चरित्र पैदा किया, चरित्र का बीज बोकर स्वभाव पैदा किया एवं स्वभाव का बीज बोकर सौभाग्य की फसल तैयार की, जिससे देश के तमाम बच्चों के साथ नागरिकों का बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्तर उन्नत हुआ। उत्पादन की प्रक्रिया व समाज का वातावरण शिक्षा का माध्यम बनने से अहिंसक समाज-रचना की नींव पड़ी। रचना का काम शक्ति और दंड से नहीं, समझ एवं सम्मति से होता है। दण्डशक्ति का साधन शस्त्र व साधक सैनिक है, वैसे सम्मति शक्ति का साधन शिक्षा व साधक शिक्षक बनता है, तब सृष्टि की एकता, जीवन की संपन्नता एवं शिक्षा की मूल्यपरकता परिणाम देती है।

नये प्रयोग का आधार :

भारतीय शिक्षण संस्थाओं में जो पढ़ाया जाता है, उसे गाँधीजी ने शिक्षा नहीं माना, क्योंकि उसका राष्ट्रीय परिस्थिति के साथ कोई संबन्ध नहीं है। शिक्षा संबंधी अपने अनुभवों के परिप्रेक्ष्य में गाँधीजी ने समझाया कि यूरोप के देशों में बच्चों को वहाँ की आबोहवा के माफिक तालीम दी जाती है। इंग्लैण्ड की दृष्टि से फ्रांस नहीं देखता, जर्मनी भी नहीं देखता, लेकिन भारत में इंग्लैण्ड की हवा के अनुकूल शिक्षा दी जाती है। अंग्रेजी सभ्यता की नकल हम किस तरह करें - इस उद्देश्य को सामने रखकर शिक्षा दी जाती है, जो न केवल धन और समय का अपव्यय करने वाली है, बल्कि नुकसानदेह भी है। इसलिए हमें अपनी शिक्षा के नये प्रयोग करने होंगे। शिक्षा राष्ट्र के नौजवानों के विचारों में क्रान्ति लाने वाली होनी चाहिये।

शिक्षा का उपयोग :

भारत कृषि प्रधान देश है। किसान ईमानदारी से खेती करके रोटी कमाता है। उसे दुनिया की साधारण जानकारी है। जिस गाँव में वह रहता है, वहाँ किसके साथ कैसा बरताव करना चाहिए- यह वह अच्छी तरह जानता है। वह नीति यानी सदाचार के नियम समझता और पालता है। अक्षर ज्ञान देकर उसके सुख में बढ़ोत्तरी करना है या उसकी झोपड़ी और हालत के प्रति उसमें असंतोष पैदा करना है? यह पहले सोच

लें। मैंने भूगोल सीखी। बीजगणित भी मुझे आ गयी। भूमिति का ज्ञान हासिल किया। भूगर्भ शास्त्र भी रट डाला। पर उससे हुआ क्या?क्या भला हुआ मेरे आसपास वालों का?मैंने क्या भला किया?इससे यह नहीं मानना चाहिए कि मैं अक्षर ज्ञान का विरोध करता हूँ। मैं इतना कहना चाहता हूँ कि उस ज्ञान की हमें पूजा नहीं करनी चाहिए। वह अपनी जगह शोभा पा सकता है और वह जगह यह है कि जब मैंने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया हो और हमारी नैतिकता की नींव मजबूत हो। तब यदि लिखने-पढ़ने की इच्छा हो तो उसे सीख कर उसका सदुपयोग जरूर कर सकते हैं।

प्राथमिक शिक्षा :

अन्य देशों के बारे में कुछ भी सही हो, कम-से-कम भारत में तो अस्सी फीसदी आबादी खेती करने वाली है और दस फीसदी उद्योगों में काम करने वाली है - शिक्षा को निरी साहित्यिक बना देना तथा लड़के-लड़कियों को उत्तर जीवन में हाथ के काम के लिए अयोग्य बना देना गुनाह है। चूँकि हमारा अधिकांश समय अपनी रोटी कमाने में लगता है, इसलिए बच्चों की पढ़ाई ऐसी नहीं होनी चाहिए, जिससे वे मेहनत का तिरस्कार करने लगें। मैं भारत के लिए निःशुल्क और प्राथमिक शिक्षा के सिद्धान्त को मानता हूँ और चाहता हूँ कि हम बच्चों को कोई उपयोगी उद्योग सिखायें और उसके द्वारा उनकी शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करें। ऐसा किया जाय तो हमारे गाँवों में लगातार बढ़ रहे नाश की प्रक्रिया रुकेगी और ऐसी न्यायपूर्ण व्यवस्था की नींव पड़ेगी, जिससे अमीरों और गरीबों के अस्वाभाविक विभेद की गुंजाइश नहीं होगी। मेरी राय में तो इस देश में - जहाँ लाखों आदमी भूखों मरते हैं, बुद्धिपूर्वक किया जाने वाला श्रम ही सच्ची प्राथमिक शिक्षा है। वह हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई - सभी के लिए एक सी होगी। हिन्दुस्तान के सभी श्रेष्ठ तत्वों को परस्पर पूरक बनाने में इससे मदद मिलेगी।

गाँधीजी ने अपनी बात स्पष्ट की कि मेरी शिक्षा योजना में हाथ अक्षर लिखना सीखने के पहले बच्चे औजार चलाना सीखेंगे। आंखें जिस तरह दूसरी चीजों को तस्वीरों के रूप में देखती और उन्हें पहचानना सीखती हैं, उसी तरह से वे अक्षरों और शब्दों को तस्वीरों की तरह देखकर उन्हें पढ़ना सीखेंगे और कान चीजों के नाम और वाक्यों का आशय पकड़ना सीखेंगे। बच्चे जब पहले पहले भरती हों, तब उनके शरीर की बारीकी से जाँच करनी चाहिए। उनके कपड़े जहाँ पैबन्द लगाने लायक हों, वहाँ धोकर पैबन्द लगाना चाहिए। आवश्यक है कि जिन चीजों की उन्हें जानकारी हो, उन्हीं की बात मैं उनसे करूं और वैसा करते हुए उनके उच्चारण सुधारूँ। व्याकरण का ख्याल करवाऊँ और नये शब्द लिखाऊँ।

शिक्षा विधि :

बातचीत के जरिये शिक्षक प्रतिदिन इतिहास, भूगोल, गणित का नया-नया ज्ञान देता जाये। इतिहास हमारे अपने समय से और उसमें भी अपने नजदीक की घटनाओं और मनुष्यों से शुरू किया जाये। भूगोल पाठशाला के आसपास की जगह से शुरू किया जाये। गणित विद्यार्थियों के घर संबन्धी हिसाबों से शुरू किया जाय। रामायण और महाभारत का सार बच्चा एक साल में सीख सकता है। शिक्षक अगर अपने विद्यार्थियों को सच्चे दिल से पढ़ाना चाहता है तो उसे पास की सामग्री से रोज नया पाठ तैयार करना चाहिए। पाठ भी इस तरह तैयार करने होंगे, जो वर्ग के बच्चों की खासियत और उनकी खास जरूरतों के साथ मेल खा सकें।

सप्तवर्षीय पाठ्यक्रम :

सप्तवर्षीय पाठ्यक्रम हो। पहले दो वर्षों में भाषा, गणित, परिवार, समाज, गाँव और पड़ोस से परिचय कराया जाय। फिर तीन वर्षों में कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, पारिवारिक उद्योग, ग्रामोद्योग आदि की जानकारी दी जाये। छठे-सातवें वर्ष अपनी पसन्द का उद्योग, वृक्षारोपण, सिंचाई, पर्यावरण संतुलन, सामाजिक स्वास्थ्य, राष्ट्रीय आवश्यकता के बारे में बताया जाये। उत्पादन को जिन्दा रखने की चेष्टा के साथ जोड़ने और परस्पर शोषण न कर एक दूसरे का पोषण करने से शिक्षा को सांस्कृतिक व नैतिक धरातल मिलता है। अगर 7 से 14 वर्ष की उम्र के अन्दर के बच्चे अक्लमंदी के साथ काम करने लग जायें और एक विशेषज्ञ के मार्गदर्शन में होने वाले सामूहिक कार्य में दिलचस्पी लेने लगें, फिर भी शिक्षा स्वावलम्बी न हो सके तो कहना होगा कि वे पाठशालाएं ठगी का स्थान हैं और उनमें काम करने वाले शिक्षक निरे बेवकूफ हैं।

उच्च शिक्षा-व्यवस्था :

कालेज की शिक्षा में कायापलट करके गाँधी जी ने उसे राष्ट्रीय शिक्षा के अनुकूल बनाने पर बल दिया। यंत्र विद्या के लिए तथा अन्य इंजीनियरों के लिए डिग्रियाँ होंगी। वे भिन्न-भिन्न उद्योगों के साथ जोड़ दिये जायेंगे। उन उद्योगों को जिन स्नातकों की जरूरत होगी, उनके प्रशिक्षण का खर्च वे उद्योग ही देंगे। टाटा वालों से आशा की जायेगी कि वे राज्य की देख-रेख में इंजीनियरों को तालीम देने के लिए कॉलेज चलायें। मिलों के संघ अपनी जरूरतों के स्नातकों को तालीम देने के लिए अपना कॉलेज चलायेंगे। इसी तरह और उद्योगों के नाम लिये जा सकते हैं। वाणिज्य-व्यवसाय वालों का अपना कॉलेज होगा। डॉक्टरी के कॉलेज प्रामाणिक अस्पतालों के साथ जोड़ दिये जायेंगे। कृषि कालेज तो अपने नाम को सार्थक करने के लिए स्वावलम्बी होने ही चाहिए। मुझे कुछ कृषि स्नातकों का दुःखद अनुभव है। उनका ज्ञान ऊपरी होता है। उनमें व्यावहारिक

अनुभव की कमी होती है। परन्तु वे देश की जरूरतों के अनुसार चलने वाले और स्वावलम्बी खेतों पर तालीम लें तो उन्हें अपनी डिग्रियां लेने के बाद फिर अपने मालिकों के खर्च पर तजुरबा हासिल नहीं करना पड़ेगा।

गरीब विद्यार्थियों को फीस माफी आदि की सुविधा देने से ज्यादा अच्छा गाँधीजी यह मानते थे कि हम उनके लिए ऐसा कोई काम दें, जिसे करके वे अपना खर्च खुद निकाल लें। भारतीय युवकों के मन में यह वहम भर कर कि अपनी जीविका अथवा पढ़ाई का खर्च कमाने के लिए हाथ-पावों की मेहनत करना भद्रोचित नहीं है, हम उनका अपना अहित करते हैं। फीस आदि की माफी धर्म बुद्धि रखने वाले विद्यार्थी के मन पर आजीवन बोझ की तरह पड़ी रहती है और ऐसा होना भी चाहिए। अपने उत्तर जीवन में कोई इस बात का स्मरण कराना पसन्द नहीं करता कि उसे अपनी शिक्षा के लिए दान का आधार लेना पड़ा था। लेकिन यदि उसने अपनी शिक्षा के लिए परिश्रमपूर्वक उद्योग किया हो और इस तरह अपनी पढ़ाई का खर्च निकालने के साथ-साथ अपनी बुद्धि, शरीर और आत्मा का विकास भी सिद्ध किया हो तो ऐसा कौन है, जो अपने उन दिनों को गर्व से याद नहीं करेगा।

विश्वविद्यालय का काम :

गाँधीजी की राय में विश्वविद्यालयों की स्थापना के लिए रुपया जुटाना लोकतांत्रिक राज्य का काम नहीं है। लोगों को उनकी जरूरत होगी तो वे आवश्यक पैसा खुद जुटायेंगे। राज्य के विश्वविद्यालय खालिस परीक्षा लेने वाली संस्थाएँ रहें और वे अपना खर्च परीक्षा शुल्क से ही निकाल लिया करें। विश्वविद्यालय शिक्षा के सारे क्षेत्र की देख-रेख रखेंगे और शिक्षा के विभिन्न विभागों के पाठ्यक्रम तैयार करके उन्हें मंजूरी देंगे। कोई खानगी स्कूल अपने-अपने विश्वविद्यालयों से स्वीकृति लिये बिना नहीं चलाये जाने चाहिए। विश्वविद्यालय के स्वीकृति-पत्र प्रमाणित योग्यता वाले और प्रामाणिक व्यक्तियों की किसी भी संस्था को उदारतापूर्वक दिये जाने चाहिये।

राज्य को तो सामान्यतः, उन्हीं लोगों को शिक्षा देनी चाहिए, जिनकी सेवाओं की उसे आवश्यकता हो। शिक्षा की अन्य सभी शाखाओं के लिए उसे निजी प्रयत्न को ही प्रोत्साहन देना चाहिए।

शिक्षण संस्थाओं का समय :

गाँधीजी चाहते थे कि तमाम पाठशालाएँ और कालेज सवेरे ही यानी 7 बजे से 11 बजे तक लगा करें। दोपहर में बच्चे अपने घर रहें। वे अपने माता-पिता के काम-काज या व्यापार-व्यवसाय में मदद कर सकते हैं। शाम को खेलें और शरीर विकास की ओर ध्यान दें।

सभ्यता की विरासत :

विकास का पाठ सिखाते हुए गाँधीजी विकसित भारतीय सभ्यता की याद दिलाते हैं कि सभ्यता वह आचरण है, जिसके द्वारा आदमी अपना फर्ज अदा करता है। फर्ज अदा करना अर्थात् नीति का पालन करना। नीति का पालन अर्थात् अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखना। मनुष्य की वृत्तियां चंचल हैं। उसका मन भटकता रहता है। उसके शरीर को ज्यों-ज्यों अधिक दिया जाये, त्यों-त्यों वह और अधिक मांगता है। अधिक पाकर भी वह खुश नहीं होता। इसलिए हमारे पूर्वजों ने विचारपूर्वक यह कहा कि हमें अपने हाथ-पांव से जितना बने, उतना ही काम करना चाहिए। हाथ-पांवों का उपयोग करने में ही सच्चा सुख और उसी में स्वास्थ्य है। उन्होंने देखा कि राजाओं और उनकी तलवारों की अपेक्षा नैतिक शक्ति अधिक बलवान है, इसलिए उन्होंने राजाओं को नीतिमान पुरुषों-ऋषियों और फकीरों से कम दरजे का माना। जिस राष्ट्र की प्रजा की यह प्रकृति हो, वह दूसरे को सिखाने योग्य है, सीखने योग्य नहीं। भारत की सभ्यता का झुकाव नैतिकता को मजबूत करने की ओर है। पश्चिमी सभ्यता का झुकाव अनीति को दृढ़ करने की ओर है। अनीति के आधार पर हुआ विकास विनाश का निमित्त बनता है, और गाँवों को परावलम्बी बनाता है। परावलम्बी होने से गाँव उजड़ते हैं। अन्न, वस्त्र, आवास, औषधि, पीने व सिंचाई के लिए पानी, गुड़-चीनी आदि बुनियादी आवश्यकता की पूर्ति स्थानीय लोगों की सहभागिता से होनी चाहिए। स्थानीय बाजार, स्थानीय उत्पादक को बढ़ावा दें। अपना हाथ जगन्नाथ - मानकर काम करने से लोगों की जरूरतें पूरी होती हैं, परस्पर विकास होता है, और प्रकृति का अनावश्यक दोहन नहीं होता। सामाजिक तथा पर्यावरणीय विनाश की कीमत पर अधिक उत्पादन होने से जितना लाभ होता है, उससे अधिक हानि हो जाती है - यह बात भारतीय मनीषी भलीभांति जानते हैं। भारत में महान पर्वत हैं। नदियाँ हैं। सृष्टि-सौन्दर्य है। इसकी सन्तान हमारे लिए पराक्रम की विरासत दे गयी हैं। यह देश तपश्चर्या का भंडार है। यहाँ सब धर्म साथ रहते हैं। सब देवी-देवताओं की पूजा होती है। इतनी साधन सम्पत्ति होते हुए भी यदि हम संसार को शान्ति प्राप्त न करा सकें तो हम अपनी विरासत को लजायेंगे और तथाकथित प्रगति की दौड़ में शामिल लोगों की होड़ नहीं रोक पायेंगे।

दिशा-दर्शन :

संसार में प्रकृति जितना पैदा करती है, वह इतना है कि हर मनुष्य को आवश्यक वस्तु और जीवन-निर्वाह की अन्य आवश्यक सामग्री सुखपूर्वक मिल जाय। प्रकृति मनुष्य के अपव्यय के लिए हरगिज पैदा नहीं करती। इसके माने यह है कि यदि एक

मनुष्य आवश्यकता से अधिक उपयोग करता है तो दूसरे को भूखा रहना पड़ता है। इसलिए जो अधिक उपयोग करता है, वह लुटेरा है। इंग्लैंड एक छोटा सा देश है। वहाँ के साढ़े तीन करोड़ आदमियों के भोग विलास के लिए सारा एशिया उजाड़ा जा रहा है। यदि भारत के बत्तीस करोड़ मनुष्य (दिसम्बर 1928) पचास रुपये मासिक से अधिक खर्च करेंगे तो संसार तबाह हो जायेगा।

भारत की जरूरत यह नहीं है कि चन्द लोगों के हाथों में बहुत सारी पूँजी इकट्ठी हो जाय। पूँजी का वितरण ऐसा होना चाहिए कि इस 1900 मील लम्बे और 1500 मील चौड़े (अब पूर्व से पश्चिम तक 2933 किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण तक 3214 किलोमीटर के 32 लाख 87 हजार 26.3 वर्ग किलोमीटर भूभाग वाले) विशाल देश को बनाने वाले साढ़े सात लाख (अब 5.5 लाख) गाँवों को आसानी से उपलब्ध हो सके।

राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक है कि हम सब लोगों का उद्देश्य एक हो, लक्ष्य एक हो और हमारी तकलीफें भी एक समान हों। एकता को प्राप्त करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि एक दूसरे के साथ सहयोग किया जाय और दूसरों के दुःखों में हिस्सा बंटाया जाय।

अहिंसा हमारी मानव जाति का कानून है। हिंसा पशु का कानून है। पशु में आत्मा सुप्त पड़ी रहती है और उसे भौतिक शक्ति (पशुवल) से भिन्न और किसी कानून का ज्ञान नहीं होता। मनुष्य की गरिमा उससे किसी उच्चतर विधान का आत्मशक्ति का पालन करने की अपेक्षा रखती है।

हमें उन करोड़ों लोगों को, जिनका हृदय सोने का है, जिन्हें देश से प्रेम है, जो सीखना चाहते हैं और इच्छा रखते हैं कि कोई उनका नेतृत्व करें, सही तालीम देनी चाहिए। लोगों को पढ़ने-लिखने के ज्ञान से ज्यादा अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के उपाय के ज्ञान की जरूरत है।

शिक्षार्थियों से :

शिक्षार्थियों को मित्र की भांति संबोधित कर गांधी ने सिखावन दी कि भारत का भविष्य तुम्हारे हाथों में है। तुम पढ़ाई को गाँवों की दृष्टि से समझने की कोशिश करो। छुट्टियों में तुम गाँवों में जाओ और गाँव वालों के दुःख में सहभागी बनो। स्वास्थ्य रक्षा के बारे में तुमने जो कुछ सीखा हो, उसे अमल में लाओ। अपने साथ चरखा ले जाओ और गाँव वालों के बीच बैठकर कातते हुए खादी का अर्थशास्त्र समझाओ। थोड़ी सी दवाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त कर उन्हें भी साथ ले जाओ और बीमारों को दो। उनके तालाबों और कुओं की जाँच करो और पानी शुद्ध न हो तो उसे

शुद्ध करने के लिए कदम उठाओ। हाथ में झाड़ू लो और बोले बिना स्वयं अपने हाथ से गंदगी दूर करके पदार्थ पाठ पढ़ाओ। तुमने जो भी सीखा है, उसमें ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसका देश की सेवा में सदुपयोग न हो सके।

गाँधीजी ने विद्यार्थियों से सीधा सवाल किया कि क्या शिक्षा का हेतु यह है कि हमारा जीवन खर्चीला बने?गाँवों में आप की ही जाति के, आपके ही धर्म के, आप के ही गुण-दोष वाले लोग दस रुपये माहवार में काम चलाते हैं। आपका काम सौ रुपये के बगैर नहीं चलता। हमें देहातियों से ज्यादा रुपया चाहिए। इसका कारण यह है कि शिक्षा ने हमें पाश्चात्य प्रथा का अनुकरण करना सिखाया है। परन्तु इस अनुकरण से हमारा काम नहीं चलेगा। उनके पास देश में समृद्धि बहुत है। वे बड़े वेतन ले सकते हैं। हमें इतने बड़े वेतन की आशा रखना नहीं पुसा सकता। आज पाँच रुपये में उदर-निर्वाह करने वाला किसान पचास रुपये में गुजर करने वाले शिक्षित मनुष्य से अधिक काम करता है। उसकी मेहनत से देश में अन्न पैदा होता है। वस्त्र उत्पन्न होता है। धन उत्पन्न होता है। लेकिन आज के पढ़े-लिखे युवक को अपना घर अच्छा नहीं लगता। गाँव अच्छा नहीं लगता। अपने माँ-बाप की आदतें अच्छी नहीं लगती। उसे खाने-पीने की अनेक वस्तुएं चाहिए। अनेक पोशाकें चाहिए। इसलिए बहुत वेतन भी चाहिए, क्योंकि जिन संस्थाओं में हम पढ़ते हैं, उनमें ऐसे कृत्रिम जीवन की आदत पड़ जाती है कि हमें हाथ-पैर से काम लेने में शर्म आती है। यह आदत विद्यालय से निकलने के बाद हमसे चिपटी रहती है। कितनी लज्जा की बात है कि कोई शिक्षित मनुष्य पोटली उठाकर जाता है तो उसके पास खड़ा मनुष्य कहेगा कि लाइये, मैं उठा लूँ, जैसे कि उसके हाथ-पैर टूट गये हों। आप विद्यालय से घर जाते हैं, तब आपको अपनी दादी से लोटा भराने में शर्म नहीं आती और आप बिना हिचके पानी पी लेते हैं। जबकि अक्सर दादी बेचारी कुएं से भी पानी खींचकर लाती हैं। आप यह कुटेव सुधारें और मजदूर बनें तो आपके जीवन में रस आयेगा, आनन्द आयेगा, सुख आयेगा। हमारा रोग बेकारी नहीं, हमारा रोग तो खर्चीला और कृत्रिम जीवन है, जिससे हाथ-पैर काम में लेने की हमारी शक्ति और वृत्ति का नाश हुआ है। - आप कला और विज्ञान के लंबे अध्ययन क्रम लेने के बजाय जिस गरीबी से हमारे देश में जीना भी असंभव हो गया है, उस गरीबी का अध्ययन कीजिये। गरीबों को किस प्रकार खुशहाल और सुखी बना सकते हैं, इस पर विचार कीजिये। भारत में जो भुखमरी है, उसका मुख्य कारण आलस्य है। आलसी मैं उसको कहता हूँ, जो उपन्यासों के पन्नों पर पन्ने पढ़ते हैं, वेल्थाम की 'थियरी ऑफ लेजिस्टेशन' पढ़ते हैं। मैं नहीं कहता कि इसे पढ़ने के लिए समय न निकालो, परन्तु शरीर श्रम के लिए भी समय निकालो। अगर गोल्फ खेलने के लिए दो घंटे निकाल सकते हो तो चरखा चलाने के लिए क्यों नहीं निकाल सकते?जो

कोई मनुष्य रोज आधा घंटा कातता है, वह एकाध आदमी को रोजी देता है।

शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने के कारण विद्यार्थियों के दिमाग पर दोहरा बोझ डाल दिया गया है। प्रोफेसर यदुनाथं कहते हैं कि विदेशी माध्यम के कारण शिक्षित वर्ग के मस्तिष्क निर्वीर्य हो गये हैं। सारी कल्पना शक्ति या सर्जन शक्ति नष्ट हो गयी है। हमारा सारा समय परायी भाषा के उच्चारण और प्रयोग याद रखने में व्यतीत होता है। यह काम ही एक बेगार जैसा है। परिणाम यह हुआ है कि हम यूरोपियन सुधार के स्याही चट बन गये हैं। इसका दूसरा फल यह निकला है कि हमारे और आम लोगों के बीच समुद्र जैसा बड़ा अन्तर पड़ गया है। हम उन्हें उनकी समझ में आने योग्य राजनीतिक विषय तो क्या, शरीर स्वास्थ्य और सफाई के तत्त्व भी नहीं समझा सकते। इस जमाने में हम पुराने ब्राम्हणों जैसे बुरे बन गये हैं। वस्तुत: उनसे भी खराब, कारण उनके अन्तर मलिन नहीं थे। वे राष्ट्र की सभ्यता के ट्रस्टी थे। हम तो वे भी नहीं रहे। हम अपनी शिक्षा का अनुचित उपयोग कर रहे हैं और आम लोगों के प्रति ऐसा बर्ताव कर रहे हैं, मानों हम उनके संरक्षक हों। गाँधीजी ने कुछ खास लड़के-लड़कियों को गरीब करदाताओं के खर्च से वैसी शिक्षा देने का विरोध किया, जो उन्हें अपने घरों से अलग कर देती है और उनकी सारी मौलिकता नष्ट कर देती है। वह तो मात्र ऊंची दूकान और फीका पकवान है।

शिक्षित होते हुए भी जो तरुण विद्यार्थी सामाजिक कुरीतियों का विरोध नहीं करते, उन्हें प्रबोधित करना गाँधीजी नहीं भूले। जो नौजवान, दहेज को विवाह की शर्त बनाता है, वह अपनी शिक्षा और अपने देश को कलंकित करता है और स्त्री जाति का भी अपमान करता है। दहेज की पतनकारी प्रथा की निन्दा करने के लिए सबल लोकमत पैदा किया जाना चाहिए। जो युवक इस तरह के पाप के पैसे से अपने हाथ गन्दे करते हैं, उनका सामाजिक बहिष्कार होना चाहिए। लड़कियों के माता-पिता को अंग्रेजी की डिग्रियों की चकाचौंध में फंसना बन्द कर देना चाहिये और अपनी छोटी-छोटी जातियों और प्रान्तों के दायरे से बाहर निकलकर अपनी लड़कियों के लिए सच्चे और बहादुर नौजवान तलाश करने में संकोच नहीं करना चाहिये। यह बुराई और दूसरी अनेक बुराइयां तभी दूर होंगी, जब शिक्षा देश की तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप होगी। ऐसा क्यों है कि इतने लड़के-लड़कियां कालेजों की शिक्षा ग्रहण करके भी एक ऐसी प्रत्यक्ष कुरीति का विरोध करने में असमर्थ या अनिच्छुक पाये जाते हैं, जिसका असर उनके भविष्य पर विवाह के जितना ही गहरा होता है। शिक्षित लड़कियां वर न मिलने के कारण आत्म हत्या क्यों करती हैं?उनकी शिक्षा किस काम की, यदि उससे उनमें एक ऐसे रिवाज का विरोध करने की शक्ति

नहीं आती, जिसका किसी तरह भी समर्थन नहीं किया जा सकता और जो मनुष्य की नैतिक भावनाओं के विरुद्ध है। उत्तर स्पष्ट है। शिक्षा प्रणाली की जड़ में ही कोई खराबी है, जिससे लड़कियां और लड़कों में सामाजिक या दूसरी बुराइयों से लड़ने की शक्ति नहीं होती। महत्व उसी शिक्षा का होता है, जो विद्यार्थी की शक्तियों का इस तरह विकास करे कि वह जीवन के प्रत्येक विभाग की समस्याओं का ठीक तरह से हल करने में समर्थ हो।

प्रौढ़ शिक्षा जीवन भर के लिए नहीं, जीवन के लिए हैं :

जनसाधारण में फैली हुई व्यापक निरक्षरता भारत का कलंक है। वह मिटना चाहिए। बेशक, साक्षरता की मुहिम का आरंभ और अन्त वर्णमाला के ज्ञान के साथ ही नहीं हो जाना चाहिए। गाँववासियों को गाँव का गणित, गाँव का भूगोल, गाँव का इतिहास और साहित्य का वह ज्ञान सिखाइये, जिसे उन्हें रोज काम में लाना पड़े, अर्थात् चिट्ठी पत्री लिखना और पढ़ना सिखाइये। वे इस ज्ञान को जुटाकर रखेंगे और आगे की मंजिलों की ओर बढ़ेंगे। गाँवों में हैजा फैलता है तो लोग कहते हैं कि यह दैवी प्रकोप है। इस वहम को भगाना प्रौढ़ शिक्षा का काम है। संयुक्त प्रान्त में हैजा फैला तो उसे रोकने का प्रयत्न करने के लिए गाँधीजी ने डा. सुशीला नैयर को भेजा और इच्छा प्रकट की कि सेवाग्राम में जो भिन्न-भिन्न संस्थाएं हैं, उनके विद्यार्थी और कार्यकर्ता अगर इस हैजे के प्रकोप को रोकने के काम में हिस्सा लें तो मुझे खुशी होगी। इस काम का प्रौढ़ शिक्षा से सीधा संबन्ध मानकर गाँधीजी ने अंग्रेजी में प्रौढ़ शिक्षा की व्याख्या लिखी : "एडल्ट एजुकेशन इज एजुकेशन फॉर लाइफ" प्रौढ़ शिक्षा जीवन भर के लिए नहीं, जीवन के लिए है।

अस्मिता का बोध कराने वाली पुस्तकें अपेक्षित :

सार्वजनिक स्कूलों में जो पुस्तकें खासतौर पर बच्चों को पढ़ाई जाती हैं, वे चाहे हानिकर न होती हों, लेकिन ज्यादातर बेकार होती हैं। वे भारतीय बालक-बालिकाओं के लिए नहीं लिखी गयी हैं। इन पुस्तकों द्वारा इस देश की अत्यावश्यक जरूरतों की पूर्ति नहीं होती।



गाँधी की इतिहास दृष्टि

सैकड़ों कौमें मिल-जुलकर रहती हैं। हिस्ट्री उसका उल्लेख नहीं करती। कर भी नहीं सकती। जब दया, अथवा सत्य का प्रवाह रुद्ध हो जाता है, तभी उसका उल्लेख इतिहास में किया जाता है। इतिहासकार जहाँ दूसरों को पराजित कर विजयी होने वाले शासकों, महापुरुषों को लेखन का विषय मानते हैं, वहाँ गाँधी शत्रु को मारकर राज्य भोगने की इच्छा को तुच्छ मानते हैं और कहते हैं कि हम शत्रुओं को भी अपने विचार समझा कर मित्र बना लें। घृणा, संघर्ष, युद्ध पर आधारित घटनाओं से भरे पड़े इतिहास पृष्ठ को पढ़ाने की चिंता गाँधी नहीं करते। वे चाहते हैं जिन्होंने स्वत्व बोध कराया, संयम सिखाया, समझदारी बढ़ायी और संस्कृति के नये-नये क्षितिज खोले, उनका ही इतिहास लिखा और पढ़ा जाय। क्यों ? इसका सीधा उत्तर है: "भारत यूरोप नहीं है, जापान नहीं है, चीन नहीं है- इसे मैं भूल नहीं सकता। मेरे मन में यह देववाणी समा गयी है कि भारत ही कर्मभूमि है। शेष सब भोग भूमियाँ हैं। इसी कारण और देशों से इस देश का काम भिन्न है। जैसी तपस्या इस देश में हुई है, वैसी और कहीं नहीं हुई। भारत में धार्मिक साम्राज्य भोगने की शक्ति है। इसके लिए लोहे के हथियारों की जरूरत नहीं हैं यह तो दिव्य हथियारों से लड़ता आया है और अब भी लड़ सकता है। अन्य देशों ने शरीर बल की उपासना की है, भारत ने आत्म बल की। भारत में महान् पर्वत हैं, नदियाँ हैं, सृष्टि-सौन्दर्य है। इसकी संतान हमारे लिए पराक्रम की विरासत दे गयी है। यहाँ सब धर्म साथ रहते हैं। सभी देवी-देवताओं की पूजा होती है। इसके बाद भी हम कोई अलौकिक कर्म करके संसार को शान्ति प्रदान न कर सकें तो अपनी विरासत के साथ इतिहास को भी जलायेंगे।" सांस्कृतिक चेतना और चरित्र का आधार कहाँ पायेंगे?

इतिहास अतीत की कहानी है। उसमें जीवन के क्रमिक आरोहण-अवरोहण का विवरण रहता है। 'हानि-लाभ, जीवन-मरण, जस-अपजस विधि हाथ' की भूमिका से ऊपर उठकर इतिहास पुरुष की भाँति 1906 में गाँधी ने घोषणा की : 'हिन्द में हो गये अनेक वीर और पवित्र महापुरुषों का खून मेरी नसों में बहता है। हिन्द में जन्मे हुए ऐसे महापुरुषों की हड्डियों से ही मेरी हड्डिया बनी हैं। हिन्द में भूतकाल में हुए और भविष्य में होने वाले हिन्दियों के बीच हमेशा का संबंध है और उनका संबंध मेरे साथ है। इसलिए हमें इतिहास को दोहराना नहीं, नये इतिहास का निर्माण करना है।"

शिकारी युग में साम्राज्यवादी युग तक लिखे गये इतिहास में नये अध्याय का श्रीगणेश करते हुए गाँधी जी ने यह जरूरी नहीं माना कि इन्सान बनने से पहले आदमी पशु बने ही, और तब यदि बन सके तो इन्सान बने। पशु अपने स्वार्थ के लिए लड़ता है, लेकिन इन्सान स्वार्थ त्यागकर परार्थ और परमार्थ का पथ प्रशस्त करता है। इसलिए आततायी का उत्तर आततायीपन से, विकृत का उत्तर विकृतपन से देने वाला युग समाप्त हुआ। उस युग में परस्पर अविश्वास और लादी हुई हुकूमत चली, अब परस्पर विश्वास प्रदर्शित करने के लिए आवश्यक है-

1. द्वेष धर्म की जगह प्रेम धर्म अपनायें।
2. हिंसा की जगह बलिदान देना सीखें।
3. पशु बल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को प्रभावी बनायें।

ट्वायनवी की भाँति दर्जनों विश्व संस्कृतियों के उत्थान-पतन का इतिहास ध्यान में रखकर गाँधी ने स्पष्ट किया कि "जहाँ से कुछ भी ऐतिहासिक प्रमाण मिलने शुरू हुए हैं, उस काल से लेकर आज तक के जमाने पर नजर डालते हैं तो दिखायी पड़ता है कि मनुष्य अहिंसा मार्ग पर चलता आया है। हमारे पूर्वज एक दूसरे को खा जाते थे। बाद में वे शिकार पर गुजर करने लगे। एक दूसरे को खाने से उन्हें घृणा होने लगी। इसके बाद शिकार पर जिंदा रहने में भी उन्हें शर्म आयी। इसलिए मनुष्य ने जमीन खोदना शुरू किया। वह जमीन से अनेक प्रकार का भोजन प्राप्त करने लगा। उसने जंगल में मंगल कर दिया। इधर-उधर भटकते हुए जिन्दगी बिताने के बजाय उसने एक जगह स्थिर होकर रहना पसंद किया। गाँव और शहर बसाये। कौटुम्बिक भावना जागृत हुई, जिसने आगे बढ़कर सामाजिक भावना का रूप ले लिया। ये सब उत्तरोत्तर बढ़ती हुई अहिंसा की निशानियाँ हैं। हिंसा की वृत्ति धीरे-धीरे कम होती गयी। अगर ऐसा न होता तो जिस तरह से बहुत से निचले दर्जे के प्राणियों की जातियाँ लुप्त हो गयीं, उसी तरह मनुष्य जाति भी आजतक खत्म हो गयी होती।"

गाँधी की दृष्टि में 'सबल' का अर्थ शरीर से बलवान और 'लड़ेंगे' का अर्थ बन्दूक या तलवार का उपयोग करना नहीं है। वे मानते हैं कि "शरीर से बलवान होने की आवश्यकता है और तलवार या बंदूक चलाना सीखना चाहें तो भले ही सीखें, किन्तु याद रखें कि जिन हाथों में सत्यरूपी तलवार हो, वे सबल हैं। उनमें तोपधारियों को पछाड़ने की क्षमता है। भारतीय ऋषियों ने जनता को तलवार के सिद्धांत की नहीं, हिंसा के सिद्धांत की भी नहीं, बल्कि कष्ट सहन और आत्म बलिदान के सिद्धांत की सीख दी है। जब तक मैं और आप यह प्राथमिक सबक सीखने को तैयार नहीं हैं, तब तक हम तलवार उठाने लायक भी नहीं हो सकते। कोई हिंसावादी हो या

अहिंसावादी–सबको बलिदान और अनुशासन की आग से होकर गुजरना होता है।" लड़ाई में जाने से ही वीरता आती है – इस बात को अस्वीकार करते हुए भी गाँधी ने विश्वासपूर्वक कहा कि "लड़ाई से अलग रहकर भी हम वीर क्या, महावीर हो सकते हैं। महावीर ने ही दुनिया को सिखाया कि मारने से न मारना ज्यादा अच्छा है। मरने/मारने वाली लड़ाई भी वीरता प्रदर्शित करने का एक सशक्त साधन है। परन्तु वह जितना सशक्त है, उतना ही दोषयुक्त भी है। हम दोषमुक्त ढंग से वीरत्व प्राप्त कर सकते हैं।"

प्राचीनकाल के ऋषियों ने यह रिवाज रखा था कि उनकी धार्मिक क्रियाओं की रक्षा क्षत्रिय करें। विश्वामित्र की तपस्या में राक्षसों द्वारा विघ्न डालने पर राम ने रक्षा की। 'ऐतिहासिक राम को हम नहीं जानते, लेकिन जो साक्षात् ईश्वर है, वह राम आज भी मौजूद है। उस राम का नाम रटकर हम तरेंगे। राम में कुछ विशेष तेज था। वे उस तेज को लक्ष्मण में उतार सके। इसलिए लक्ष्मण महान तपस्वी हुए। फिर भी तप ही सब कुछ नहीं है, क्योंकि आहार और निद्रा का चौदह वर्ष तक त्याग जैसे लक्ष्मण ने किया था, वैसे इन्द्रजीत ने भी किया था। किन्तु लक्ष्मण को राम से तप का जो मर्म प्राप्त हुआ था, इन्द्रजीत उससे वंचित था। इतना ही नहीं, उसकी वृत्ति तप का दुरुपयोग करने की ओर थी। इसलिए उसे राक्षस कहा गया और वह लक्ष्मण के हाथों पराजित हुआ।" गाँधी शास्त्रों को इतिहास के रूप में नहीं पढ़ते। फिर भी इतिहास में वर्णित शम्बूक वध की बात पढ़कर लिखते हैं : 'शम्बूक का सिर काट लेने की कथा राम के सामान्य चरित्र से मेल नहीं खाती। मैं अपने राम को किसी शूद्र का सर काटने में असमर्थ पाता हूँ। यदि शम्बूक की कथा से कुछ सिद्ध होता है तो यही कि जिस जमाने में इस कथा का जन्म हुआ, उस जमाने में शूद्रों के लिए अमुक धार्मिक विधि–विधानों का अनुष्ठान गम्भीर अपराध माना जाता था। मैं नहीं मानता कि शम्बूक नाम के किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का वध राम नाम के किसी ऐतिहासिक व्यक्ति ने किया था। भरत जैसा राम का कोई भाई भले न हुआ हो, किन्तु वैसे भरत भारत में हुए हैं। तभी तो तुलसीदास उसकी कल्पना कर सके। जिन लोगों में रामायण में वर्णित गुण हैं, भारतवर्ष उनकी वन्दना करता है।

"मैं प्राचीन भारत के गौरव को वापस लाना चाहता हूँ। यदि प्राचीन काल में सीता हुई तो इस काल में भी होनी चाहिए। रामचन्द्र जैसे युगपुरुष हुए तो इस युग में भी होने चाहिए। हमारे पूर्वजों की विरासत हममें आनी चाहिए। हरिश्चन्द्र और ध्रुव की कथाएँ सब ने सुनी हैं। जैसे हरिश्चन्द्र ने किया, हम बिल्कुल वैसा नहीं कर सकते, किन्तु कुछ अंश में तो कर सकते हैं। भारतीय जीवन को कर्तव्य के रूप में देखते हैं, जबकि भारतीयेत्तर लोग कर्तव्य और भोग को मिला देते हैं। ऐसे मिलाने से लिखी गयी

कथाओं में राग है, द्वेष भी है, आकर्षण है, अपकर्षण भी है। राम की कीर्ति गाने वाले तुलसीदास जी ने जो सर्वोत्तम भजन रचा, उसमें शत्रु का नाश करने की राम की क्षमता को पहला स्थान दिया है। ऐसे ही ग्रन्थों में अवतारी पुरुषों को भी खून के प्यासे, वैर से भरे और दुश्मनों के प्रति दयाहीन बताया गया है। लेकिन जब उन्हें गहराई से पढ़ें तो इतना भर सिद्ध होता है कि प्राचीन हिन्दुस्तान युद्धकला जानता था। हिंसा करने की उसमें शक्ति थी, परन्तु उसने इस प्रवृत्ति को यथाशक्ति अधिक से अधिक कम किया।" शुद्ध साध्य के लिए शुद्ध साधन अपनाना धर्म मान लिया।

भगवद्गीता से हिंसा की प्रेरणा लेने का अर्थ निकालते हैं– ऐसे लोगों को इंगित कर गाँधी जी ने समझाया कि हम जो कुछ पढ़ते हैं और देखते हैं, उसमें अपनी ही भावनाओं की प्रतिच्छाया पाते हैं। मुझे तो भगवद्गीता के प्रत्येक पृष्ठ में प्रेम के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला। कुरुक्षेत्र में पाण्डवों और कौरवों के युद्ध के अवसर का उपयोग करके गीताकार ने हमारे भीतर अच्छाई और बुराई के बीच जो संघर्ष चलता है उसकी ओर ध्यान दिलाया है। फिर उसने यह दिखाया है कि बुराई को नष्ट कर देना चाहिए। बुराई की शक्तियों को अज्ञानतावश अच्छाई समझकर उसके लिए संघर्ष करने में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं बरतनी चाहिए। स्थूल अर्जुन को समझाने के लिए कृष्ण जैसा चतुर मनुष्य गीता का ज्ञान बघारे, यह तो चमड़े की रस्सी के लिए भैंस मारने के समान होगा। यह मान्यता, यदि कृष्ण परमात्मा हैं तो उन्हें लांछित करने वाली है। अर्जुन यदि अनुभवी और विवेकी योद्धा हैं तो उसके प्रति भी अन्याय करने वाली है।" घटनाओं की अपेक्षा निहित कार्य–कारणों में जो ज्ञेय है, उसे जानें, जो हेय है, उसे छोड़ें, जो उपादेय है, उसे अपने आचरण से लायें।

महाभारत में अनेक कथाएँ हैं, जिनमें अस्वाभाविक जन्मवृत्तांत, स्त्री–पुरुषों के निःसंकोच मिलन, वर और शाप से होने वाले लाभ–नुकसान का विवरण है। कौरव–पाण्डवों की द्यूतक्रीड़ा से महाभारत हुआ। "जिस कुल में कृष्ण जन्मे, उसमें भी व्यभिचार शराब, जुआ आदि त्रिदोष घुस गये तो उसका विनाश हो गया। कृष्ण को उसका साक्षी बनना पड़ा।" रावण को हमारी वासना का और कौरवों को हमारे भीतर के दोषों का प्रतिनिधि मानने वाले गाँधी के अभिमतानुसार कृष्ण की भक्ति भारतीय इसलिए करते हैं कि उन्होंने गोवर्धन धारण कर गोकुल के लोगों को दुःख से छुड़ाया, यमुना का प्रदूषण मिटाया, गोपालन किया और अपनी अगाध शक्ति से पाण्डवों को जिताया। परोपकार वृत्ति के कारण ही उनकी कीर्ति के गीत गाये जाते हैं।"

'परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम्।'

काल्पनिक न्याय प्राप्ति के उपाय रूप में राष्ट्रों के दण्ड विधान में विनाश को

अपराध नहीं माना जाता तथा युद्ध बर्दाश्त किया जाता है। योद्धाओं को प्रोत्साहित करने के लिए 'युद्धभूमि में मरने पर स्वर्ग और जीतने पर राज्य का प्रलोभन दिया जाता है। जैन और बौद्ध इससे सहमत नहीं हैं। लेकिन महावीर और बुद्ध ने अपने समय में साम्राज्यवाद और गणतंत्रों के बीच हुए युद्धों का विरोध कहाँ किया? "जैनों में खून देखकर डरने का जबरदस्त वहम है, परन्तु दुश्मन के विनाश से इस पृथ्वी पर और किसी को जितनी खुशी होती है, उतनी ही जैनों को होती है। भूत मात्र के प्रति दया के सिद्धांत को अमल में लाने से बौद्ध भी असफल रहे। ऐतिहासिक कथाएँ सच हों तो आदि शंकराचार्य ने हिन्दुस्तान में बौद्ध धर्म को निकाल बाहर करने के लिए अवर्णनीय निर्दयता से काम लेने में संकोच नहीं किया। उस काल में अधिक से अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि कुछ व्यक्तियों ने अहिंसा के सिद्धांत को लोकप्रिय बनाने के गंभीर प्रयत्न किये, और उसमें यहाँ संसार के किसी भी देश की अपेक्षा ज्यादा सफलता ज्यादा मिली।" मगर यह विचार नहीं सूझा कि अहिंसा का सामुदायिक जीवन में प्रयोग कर अपनी निर्बलताओं/कमजोरियों/कमियों पर विजय पायी जा सकती है।

"पुरानी बातों में बहुत सी अच्छी बातें हैं, किन्तु जैसे अग्नि के साथ धुआँ मिला होता है, वैसे ही पुरानी अच्छाइयों के साथ कुछ बुराइयाँ भी रहीं। उनका पृथक्करण करके हमने तत्व निकाला होता तो प्लासी के मैदान में भारतीयों का पराभव नहीं होता। उस समय हम एक-दूसरे से लड़ने में व्यस्त कायर लोगों का एक झुंड मात्र बन बैठे। हमारे लोग ईस्ट इंडिया कंपनी के रुपयों के भूखे थे। वे तुच्छ वस्तुओं के लिए अपनी आत्मा को बेचने में भी नहीं हिचके। कुछ व्यक्तियों के बहादुरी दिखाने के उदाहरण होने और उन दिनों के अतिशयोक्तिपूर्ण विवरणों का पीछे से सुधार हो जाने पर भी कुल मिलाकर हमने जो अपनी दुर्गति करवायी, उसमें कोई अहिंसा नहीं थी।" व्यक्ति पर समाज का, समाज पर शासन का, शासन पर सत्य का अंकुश रहे बिना सामुदायिक चरित्र भ्रष्ट होता है।

सरकारी स्कूलों में जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह केवल अंग्रेजों की दृष्टि से ही लिखा होता है। उन्हीं चीजों को जर्मन, फ्रेंच और अमेरिकन इतिहासकार लिखते तो दूसरी तरह लिखते। सरकारी लेखक जिस तरह लिखते हैं, जनता का आदमी उससे भी अलग ढंग से लिखता है, फिर भी 'युद्धस्य वार्ता रम्या' की भावभूमि लेखन में समान रही। इसलिए गाँधी ने हिन्दुस्तान के वातावरण को देखकर इतिहास लिखने की प्रेरणा देते हुए कहा 'हम हिंसा के क्षेत्र में होने वाली शोधों और आविष्कारों से आश्चर्यचकित होते रहते हैं, परन्तु मेरी मान्यता है कि अहिंसा के क्षेत्र में हिंसा से कहीं अधिक

अकल्पनीय तथा बाहर से असंभव दिखायी देने वाली शोधें और आविष्कार किये बिना इतिहास आगे नहीं बढ़ा सकता। इसके लिए सोने की अपेक्षा सत्य, धन और शक्ति के प्रदर्शन की अपेक्षा निर्भयता तथा अपने प्रति प्रेम की अपेक्षा दूसरों के प्रति उदारता जरूरी है। यह भारत का सौभाग्य है कि यहाँ अपनी पुरानी सभ्यता जीवित है। हम नहीं भूल सकते कि जब दुनिया के सारे देश बिल्कुल आदिम ढंग की जिन्दगी बसर कर रहे थे, उनके नागरिकों को जानवरों की खालों या पेड़ों की छालों से बेहतर पहनावा नसीब नहीं था, तब भारतीयों ने कपास की उपज करके रूई से सूत निकालने, फिर कपड़ा बनाने की कला आविष्कृत की। कृषि और ऋषि ने 'अन्नं बहुकुर्वीत तद् व्रतम्' उत्पादन करना जीवन व्रत बना दिया।

जिन्होंने भारत का इतिहास पढ़ा है, उन्हें तुरंत यह याद आ जायेगा कि डच, फ्रांसीसी और अंग्रेज व्यापार करने इस देश में आये। उस समय जितना महीन कपड़ा बनाने का और बढ़िया कलापूर्ण चिकन का काम भारत में होता था, वैसा अन्य किसी देश में नहीं होता था। भारतीय जिन-जिन यंत्रों का उपयोग करते थे, वे यंत्र सामान्य बढ़ई तैयार कर देते थे। उत्पादन का साधन, उत्पादन की पद्धति और उत्पादन की प्रक्रिया उत्पादक और उपभोक्ता के सामंजस्य पर आधारित थी। विदेशी व्यापारी जहाजों में भरकर भारतीय उत्पाद ले जाते थे। वे मसाले, जड़ी बूटियाँ, कल्पवृक्ष (गन्ना) और कामधेनू (गाय) भी ले गये। मेहनत कर उन्होंने थोड़े मजदूरों से अधिक उत्पादन करने का उपक्रम किया। बड़े उद्योग लगाये। ज्यादा मात्रा में माल तैयार हुआ। कच्चे माल की मांग बढ़ी, उन्होंने अन्य देशों से कच्चा माल लाने, उसे पक्का बनाकर बेचने के लिए उपनिवेश बनाये। धीरे-धीरे उत्पादन के साधनों और कमजोर देशों पर उपनिवेशवादियों का आधिपत्य हो गया। भारत के हिन्दू मुस्लिम शासकों की फूट का फायदा अंग्रेज व्यापारियों ने उठाया और वे शासक बन बैठे। जनता शासित ही नहीं, शोषित भी हुई। शोषण के खिलाफ छिड़े संघर्ष से सामंतवादी, पूँजीवादी, साम्यवादी, समाजवादी, साम्राज्यवादी शक्तियों के अन्तर्विरोध उजागर हुए। पेरिस कम्यून क्रान्ति, असफल रूसी, सोवियत क्रान्ति और विभिन्न आन्दोलनों के चलते युद्ध और विश्वयुद्ध हुआ। युद्ध के कारणों को समझकर गाँधी ने मजदूरों, किसानों, कारीगरों, व्यापारियों की संघर्ष में लगने वाली शक्ति सृजन में लगवायी। विदेशी वस्त्रों की होली जलाकर अतिकेन्द्रित सत्ता व केन्द्रीय उद्योगों को चुनौती दी तथा स्वदेशी के प्रति प्रतिबद्धता पैदा कर जनता को एक और नेक बनाया। जनता को समझाया कि भारत का शक्ति केन्द्र शासक नहीं, जनता है। भारत धनवान है या गरीब, इसका अंदाजा करोड़पति की आय से नहीं, उसके किसान की आय से लगाओ। हिन्द की नीति अनीति वेश्या से नहीं, बल्कि किसान की स्त्री से नापो और अपना रहन-सहन, व्यापार- व्यवहार स्वदेशी

बनाओ। "कोई राष्ट्र अपने स्वर्णिमं अतीत को याद करके आगे नहीं बढ़ सकता। जब तक हम अपने गौरवमय अतीत का वर्तमान काल में पुनरुद्धार नहीं करते, तब तक पुरानी पूँजी के संबन्ध में चुप रहना ही बुद्धिमानी है। जिस पूँजी का हम लाभ नहीं उठा सकते, वह केवल बोझ रूप है। हम वीर और पवित्र पुरुषों की संतानें हैं, लेकिन यदि उस विरासत को शोभान्वित करने की ताकत हममें नहीं है तो इतिहास क्या कहेगा?"

गाँधी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन मूल्यों को प्रतिष्ठित करने हेतु राजशाही की कमियाँ बताकर यह कहने में भी नहीं हिचके कि मनुष्यत्व का हनन करने तथा साधनों का नाश करने वाले जितने राजा हैं, वे भी मुझे लुटेरे मालूम पड़ते हैं। हमारा इतिहास लुटेरों का इतिहास है। प्रताप वगैरह का चरित्र पढ़कर मुझमें जोश पैदा नहीं होता। एक खास उद्देश्य पूरा करने के लिए उन्होंने पराक्रम किये। हमारी जनता ने राजाओं को संतुष्ट करने की कोशिश की। पशुओं को नैवेद्य चढ़ाया, सांपों की पूजा की। वह सब स्वार्थ साधने के लिए था। स्वार्थ से सत्ता पोषित हुई और सत्ता संघर्ष ने युद्ध को न्योता। युद्ध भी जब द्वितीय विश्व युद्ध का रूप ले बैठा, तब 23 जुलाई 1939 को गांधी ने सर हिटलर को लिखा "आज संसार में आप ही ऐसे व्यक्ति हैं, जो युद्ध को रोक सकते हैं, जिससे मानव जाति बर्बर अवस्था में पहुँच सकती है। क्या आपको किसी उद्देश्य के लिए इतना बड़ा मूल्य चुकाना चाहिए, फिर चाहे वह उद्देश्य आपकी दृष्टि में कितना ही महान् क्यों न हो? आशा है, आप एक ऐसे व्यक्ति की अपील पर ध्यान देंगे, जिसने सोच समझकर युद्ध के तरीके का त्याग कर दिया है और उसमें उसे काफी सफलता भी मिली है।"

सिद्धान्तहीन राजनीति, श्रमहीन धन, नैतिकताहीन व्यापार, चरित्रहीन शिक्षण, विवेकहीन आनन्द, मानवताहीन विज्ञान और त्यागहीन पूजा को पाप मानकर मनुष्य और समाज को जिस हद तक अहिंसा और सत्य की ओर बढ़ाने की कोशिश गाँधी ने की, उसकी पंडित जवाहर लाल नेहरू ने प्रशस्ति की। लेकिन वे उनका मर्म कहाँ समझे? उन्होंने अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' के दस पन्द्रह पृष्ठों में अकबर का वर्णन किया, उसी बीच दस पन्द्रह पंक्तियों में तुलसीदास की चर्चा कर मात्र इतना ही लिखा कि अकबर के जमाने में तुलसीदास हुए, जिनकी रामायण उत्तर भारत में घर-घर पढ़ी जाती है। गाँधी जी के जाने के बाद एक बार नेहरू जी विनोबा से मिलने आये तो वे पूछ बैठे– "पंडित जी, अकबर के जमाने में तुलसीदास हो गये या तुलसीदास के जमाने में अकबर हुए?" हंसकर नेहरू जी बोले– "इतिहास लेखन का ऐसा ही रिवाज है।" गाँधी ने ऐसे रिवाज का विकल्प दिया और सिखाया कि "जो

व्यक्ति राष्ट्र के लिए प्राण देता है, वह महापुरुष कहलाता है, किन्तु अपना स्वार्थ साधने के लिए दुनिया के स्वार्थ को हानि पहुँचायी जाय तो उस राष्ट्र स्वार्थ को भी निकृष्ट मानना चाहिए।

निकृष्टता से उत्कृष्टता की ओर बढ़ाने वाला गाँधी का राष्ट्रप्रेम विश्व प्रेम का बड़ा अंश था। उन्होंने स्वीकार भी किया कि "यह प्रेम का धवल गिरि नहीं, परन्तु उसका दार्जिलिंग है, जहाँ से धवलगिरि के सुवर्ण दर्शन होते हैं। देखने वाले सोचते हैं कि यदि प्रेम का दार्जिलिंग इतना सुंदर है तो सामने चमकने वाला प्रेम का धवलगिरि कितना अधिक सुंदर होगा। राष्ट्र प्रेम अंत में मानव समाज को विश्व प्रेम की चोटी तक ले जाता है।"

आखेट युग से अणुयुग तक की विकास यात्रा का सत्य तथ्यपरक मूल्यांकन करने वाली गाँधी की इतिहास दृष्टि अनुपम है, महत्तम है, जिसे आत्मसात् करने वाले इतिहासज्ञ कम हैं, क्योंकि कर्मभूमि की चर्चा के साथ अर्चा करने वाले ही स्वस्थ लेखन कर पाते हैं। श्रद्धा अहिंसा में और निष्ठा हिंसा में रखने वाले दुविधा ग्रस्त लेखकों ने विश्व इतिहास को अन्तर्विरोधी घटनाओं का दस्तावेज बना रखा है।



सन्दर्भ

गाँधी की इतिहास दृष्टि : इतिहास विभाग, महात्मा गाँधी विद्यापीठ वाराणसी द्वारा आयोजित चिन्तनगोष्ठी में पठित एवं प्रकाशित।



प्राचीनतम इतिहास के अनावृत साक्ष्य

व्यक्ति, समाज, राष्ट्र का परिचय उसके स्वभाव से मिलता है। स्वभाव में तीन गुण रहते हैं : सत्व, रज, तम। सात्विकता अच्छी है, राजसिकता सह्य है, तामसिकता बुरी है। तामसिकता विनाश का, राजसिकता विलास का और सात्विकता विकास का परिवेश बनाती है। व्यक्तित्व एवं कृतित्व उसी से प्रभावित रहता है। सत्-असत् प्रभाव संकेतों में, शब्दों में, लेखन में अभिव्यक्त होता है। अभिव्यक्ति साहित्य, संगीत कला बन जाती है। 'साहित्यसंगीतकलाविहीनः, साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः' उक्ति रचने वालों ने उसी साहित्यकार, संगीतकार, कलाकार की सराहना की, जिसकी रचनाओं से सुमति को पोषण मिला। सुमति प्राप्त व्यक्ति स्वार्थ से अधिक परार्थ व परमार्थ साधने लगा, तब परोपकार पुण्य और पर-पीडन पाप माना गया। 'परोपकारः पुण्याय पापाय पर-पीडनम्'। तलवार के बल पर परोपकार करने वाला वीर और तपस्या के बल पर परोपकार करने वाला महावीर कहलाया। मान्य आचार-संहिता ने शक्ति प्रदर्शन से अधिक निर्भयता, स्वर्ण से अधिक सत्य, भोग से अधिक योग और हिंसा से अधिक अहिंसा को प्रतिष्ठा दी। प्रतिष्ठा प्राप्त लोगों का ज्ञान, दर्शन, चरित्र धर्म बना, जिससे एक दूसरे को मारना नहीं, बचाना आया। 'जीयो और जीने दो' का स्वर धर्म ग्रन्थ मुखरित करते हैं। उल्लास-विषाद, भाव-अभाव, संघर्ष-निर्माण के भावों की प्रधानता काव्य में रहती है। धार्मिक ग्रंथों में स्थूल मनोभावों का वर्णन ठोस रूपक द्वारा एवं काव्य में स्थूल विषयों का वर्णन सूक्ष्म वस्तुओं द्वारा होने से विदेशी इतिहासवेत्ता मान बैठे कि विश्व के राजनीतिक इतिहास में भारत का कोई स्थान नहीं है। उन्हें नहीं मालूम कि आसुरी लालसाओं और झूठी महत्वाकांक्षाओं से जीवन को नरक बना देने वाली राजनीति नहीं - शाश्वत व चिरंतन सत्य परायण लोकनीति ही भारत की अस्मिता है। 'सर्वभूतहितेरताः' की ऊर्जा से परिचालित और 'यतोधर्म स्ततो जयः' की उद्घोषक इस लोकनीति को श्रुतियाँ, स्मृतियाँ, दादी-नानी की कहानियाँ रमणीय बनाये रखती हैं : 'पदे पदे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः' रमणीयता अस्तित्व की अखंडता को अक्षुण्ण रखती है। उसमें रंग-रूप भरता है - इतिहास। 'विश्व इतिहास की झलक' के लेखक पंडित जवाहर लाल नेहरू का कथन है : "इतिहास पढ़कर हम जान सकते हैं कि दुनिया ने कैसे आहिस्ता-आहिस्ता, लेकिन निश्चित रूप से तरक्की की।"

इतिहास लेखक एलफिन्स्टन ने 19वीं सदी के आरंभ में लिखा था कि भारतीय इतिहास में सिकन्दर के आक्रमण (ई.पू. से 71 वर्ष) से पूर्व की किसी सार्वजनिक घटना की तिथि निश्चित नहीं की जा सकती। पार्टीजर, सीतानाथ प्रधान, राय चौधरी आदि विद्वानों ने शोध कर वैवश्वत मनु से लेकर राम, राम से युधिष्ठिर और युधिष्ठिर से विक्रमादित्य तक क्रम निर्धारण किया। जयचन्द्र विद्यालंकार के भारतीय इतिहास की रूपरेखा में दर्शित है कि इक्ष्वाकु की पहली पीढ़ी से चालीसवीं पीढ़ी सतयुग में हुई। इकतालीस से पैंसठवीं पीढ़ी त्रेता में हुई। छासठ से पन्चानबेवीं पीढ़ी द्वापर में हुई। ईसा पूर्व 2950 से 2300 तक सतयुग, 2300 से 1900 ई.पू. तक त्रेता 1900 से 1425 ई. पू. तक द्वापर काल माना गया। ई.पू. 1424 में महाभारत युद्ध हुआ। 'महाभारत कालीन समाज' में सुखमय भट्टाचार्य ने प्राच्य पंडितों के सिद्धान्त के आलोक में कौरव-पाण्डवों का युद्ध ईसा के जन्म से 3101 वर्ष पूर्व हुआ बताया। यह मन्तव्य है कि यद्यपि कौरव-पाण्डवों के युद्ध को लेकर ही महाभारत की रचना हुई है, तथापि युद्ध का वर्णन इसका गौण उद्देश्य रहा है। ऐतिहासिक घटनाओं एवं उपाख्यानों के माध्यम से मनुष्य का हर अवस्था में पथ-प्रदर्शन तथा सत्य का प्रचार ही महाभारत का प्रधान उद्देश्य है। डॉ. मोतीचन्द्र के शब्दों में महाभारत प्राचीन भारतीय संस्कृति, इतिहास, धर्म, राजनीति, तत्वज्ञान तथा उपाख्यानों का खजाना है। महाभारत के सारे प्रासाद की रचना मानवता की नींव पर उठायी गयी है। इसीलिए इसके पात्र देवता न होकर मनुष्य हैं। मानव में जो सारी अच्छाइयां और बुराइयां होती हैं, उनमें हैं। मानवता को ही धर्म का प्रतीक मानने के कारण व्यास ने उस शक्ति को धर्म बताया, जो समाज को धारण करती है तथा जिसके आधार पर समाज का संगठन होता है। धार्मिक न स्वर्ग की कामना करता है और न अपवर्ग की। वह तो सभी का दुःख दूर करने में ही मगन रहता है।

'प्राचीन भारत' ग्रंथ में डॉ. राजबलि पाण्डेय द्वारा प्रागैतिहासिक काल से उत्तर वैदिक काल का विवरण प्रस्तुत है, जिसमें राज की बात यह है कि "जैन साहित्य बहुत प्राचीन है। जैनधर्म के प्रवर्तक ऋषभदेव अयोध्या में उत्पन्न हुए थे। वे प्रथम तीर्थंकर माने जाते हैं। उनसे लेकर बाइसवें तीर्थंकर तक का इतिहास (श्रमणों के कथनोपकथन एवं श्रुति-स्मृति आश्रित रहा), अभी तक मालूम नहीं है। परन्तु तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ और चौबीसवें तीर्थंकर महावीर का इतिहास प्रकाश में आ चुका है।" महावीर (ई.पू. 599 से 527) के बाद ताडपत्र, भोजपत्र पर लिखा जाने लगा। शास्त्र लेखन महावीर के नौ सौ वर्षों बाद प्रारंभ हुआ। भूतकाल में हुए नीतिवान, शूरवीर, पवित्र, परोपकारी महापुरुषों के साथ वर्तमान की विसंगतियाँ एवं भविष्य की संभावना लेखन का विषय बनीं। चित्त, चिन्तन, चरित्र को रूपान्तरित करने वाले ग्रंथों का

निर्माण हुआ। उनकी हस्तलिखित प्रतियाँ देश भर के शास्त्र भंडारों में सुरक्षित हैं। श्रुति-स्मृति को लोकाधार देती विविध विधाओं वाली ग्रंथ सामग्री संस्कृति पर आये संकटों का निवारण करती रही और सांस्कृतिक क्रान्ति को भी खाद-पानी मिलता रहा। 'शत्रोरपि गुणाः वाच्याः दोषाःवाच्याः गुरोरपि' की भावभूमि प्रशस्त होने से साहित्य, संगीत, कला ने अनेकता में एकता प्रदर्शित करने का उपक्रम किया। 'एकं सद्विप्राः बहुधा वदति' एक ही सत्य अनेक रूपों में अभिव्यक्त होने लगा। उदारता आचरण में आयी : 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' बोध वाक्य बना। उपलब्धि रही :

यूनान मिस्त्र रूमां सब मिट गये जहाँ से।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।।

विदेशी शोध कर्ता सिकन्दर के आक्रमण के बाद की घटनाओं की तिथियाँ निर्धारित करने में संलग्न रहे। वैसे ही भारतीय शोधकर्ता वैदिक वाङ्मय, रामायण, महाभारत और कुछ संत साहित्य के सहारे ऋषभ देव से महावीर तक की कड़ियां जोड़ पाये। किसी ने विश्वास के साथ यह नहीं कहा कि भारत ही एक ऐसा देश है, जहाँ मत्स्यावतार, कच्छपावतार, शूकरावतार, नृसिंहावतार, वामनावतार की बुनियाद पर लिखित मानव विकास का इतिहास है। जब वृक्षों से जीवनयापन में कठिनाई होने लगी तो परस्पर सहयोग से आश्रय, आवास तथा क्षुधापूर्ति की अनुकूलता करने वाले को 'कुलकर' कहा जाने लगा। उत्तर पाषाण युग में चौदह कुलकर हुए। प्रथम का नाम क्षेमंकर और चौदहवें का नाम नाभिराय था। वे पशुबल से अधिक आत्मबल के पोषक थे। नाभिनन्दन हुए - ऋषभदेव, जिन्होंने असि (शस्त्र), मसि (साहित्य) कृषि सहित नाना कलाओं का प्रशिक्षण दिया और ऋषि बनकर श्रम, सम (समता), शम (शान्ति) मूलक श्रमण संस्कृति की संरचना की। श्रमण संस्कृति के सूत्रधार ऋषभदेव को डा. सम्पूर्णानन्द 25 हजार वर्ष पूर्व तथा आचार्य महाप्रज्ञ 45 हजार वर्ष पूर्व हुआ बताते हैं, जबकि 'संस्कृति के चार अध्याय' में राष्ट्र कवि दिनकर ने प्रतिपादित किया है कि ऋषभ का पुत्र भरत हुआ, उसके नाम पर इस देश को भारतवर्ष कहते हैं। अग्निपुराण, मार्कण्डेयपुराण में भी ऋषभ से भरत की उत्पत्ति और भरत से भारतवर्ष होने की चर्चा है। दुष्यन्त पुत्र भरत से अनेक पीढ़ियों पूर्व हुआ था ऋषभपुत्र भरत। उसकी बहन ब्राह्मी थी, जिसने अपने पिता ऋषभदेव से लिपि सीखी और उसे इतनी प्रसिद्धि दी कि ब्राह्मी लिपि इतिहास का प्रामाणिक दस्तावेज बनी, जिसका नाना देशों की लिपियों पर अमिट प्रभाव है। 'आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन' में आचार्य नगराजजी डी लिट् ने उसका ब्योरा दिया है। 'अहिंसा पर्यवेक्षण' में वे लिखते हैं कि प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की वाणी का संकलन उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती ने वेदों के रूप में किया।

उत्तरवर्ती तीर्थंकरों से अप्रभावित मनीषी मंत्र, संगान आदि उनमें जोड़कर वेदों को ब्राम्हण संस्कृति का आधार ग्रंथ बना बैठे। वर्णाश्रम, देवपूजा, यज्ञोन्मुखी अनुष्ठान उसका प्रतिफल है।

ब्राम्हण संस्कृति नैसर्गिक शक्तियों को देव मानती है। उनसे अन्न, वस्त्र, बल, सौभाग्य, सम्पदा की याचना करती है। विपद में रक्षा तथा शत्रुओं पर विजय पाने के लिए यज्ञ में आहुतियाँ देती है, अर्ध्य अर्पित करती है, जिसके उत्पादन में वह सहभागी नहीं होती। वह उत्पादक (श्रमणोपासक) को यज्ञद्रोही, असुर, राक्षस, अनार्य आदि बताती है। ईश्वर कर्तृत्व के विचार ने उत्पादकों का व्यक्तित्व छीन लिया और उन्हें देवों का दास बना दिया। कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं की शक्ति उपभोक्ता ने ली। बदले में उत्पादक को शरणागत रहने की सीख दी।

श्रमण संस्कृति ने आत्म कर्तृत्व के विचारानुरूप आचार करने पर बल दिया। दूसरों की शक्ति पर निर्भर रहने वालों को समझाया कि व्यक्ति की एक मुट्ठी में स्वर्ग है, दूसरी में नरक। एक दृष्टि में घोर पाप है, दूसरी में पुण्य का अक्षय भंडार। हम भाग्य के खिलौने नहीं, वरन् भाग्य के निर्माता हैं। आज का पुरुषार्थ कल भाग्य बनकर हमारा साथ देगा। श्रम, सम, शम की संगति बनाये रखकर श्रमिक देवाधिदेव (तीर्थंकर) पद पा सकता है।

देव-असुर, आर्य-अनार्य, श्रेष्ठ-कनिष्ठ के बीच संघर्ष व युद्ध होते रहे। उनके कारण जानने या उनका निवारण करने का दायित्व संभालने के बजाय ब्राम्हण-संस्कृति ने एक की जय और दूसरे की पराजय चाही। श्रमण संस्कृति ने शिकार के पीछे भागने वालों को शिकार न करने, जुए में दांव लगाने वालों को जुआ छोड़ने, मद्यपान कर आपस में मर मिटने वालों को मदिरा न पीने, पर-स्त्री हरण करने वालों को स्व-दार संतोष व्रती बनाने तथा आहार-विहार-व्यापार शुद्धि के संस्कार दिये। युद्ध में मारे गये सैनिकों की विधवाओं के आंसू पोंछे, अनाथ बालक-बालिकाओं की सार-संभाल की, वृद्ध माता-पिताओं को संबल दिया और पराजितों का भी आत्मविश्वास जगाया। द्वारिका से पुरी तक तीर्थंकर अरिष्टनेमि ने पद-यात्रा की। पूर्व से पश्चिम व उत्तर से दक्षिण तक घर-घर पहुंचकर श्रमण-श्रमणियों ने सप्तव्यसन त्यागने तथा भोगभूमि को कर्मभूमि बनाने की प्रेरणा दी। उसके कारण युद्धों से हुई क्षति की पूर्ति हुई। समझ में आया : 'न देव काम आयेगा, न दैव काम आयेगा, मनुष्य को मनुष्य ही सदैव काम आयेगा'। ब्राम्हण संस्कृति ने भी अपने से अलग पड़े शूद्रों आदि की दशा तथा बहुसंख्यकों की भावना का आकलन कर शिव को देवाधिदेव के सिंहासन पर विराजमान कर दिया, जिनके गण में दलित, गलित, पीड़ित, शोषित, नंग-धड़ंग भूत-प्रेत

शामिल थे। जी.सी.पाण्डेय के अभिमतानुसार शिव सदृश देव की पूजा, पीपल की पूजा अन्य पशुओं की पूजा सिन्धु सभ्यता की देन है। वृषभ, हाथी, घोड़ा, बानर, गैंडा, भैंसा, सूअर, हिरण, सिंह, बकरा, क्रौंच, बाज, कच्छप को श्रमण संस्कृति ने तीर्थंकरों की प्रतिमाओं का चिन्ह बनाया, वैसे शिव के साथ सर्प, महादेव के साथ नन्दी चिन्हित हुए। सबकी सहभागिता ने भारत को सोने की चिड़िया बनाया। रामायण, महाभारत के सदृश लिखित ग्रंथ– त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित से 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव, 9 प्रति वासुदेव एवं बुद्धचरित के साथ बोधिसत्व परंपरा जानी जा सकती है। इससे इतना स्पष्ट हो जाता है कि देह भले ही न रहे, लेकिन देही के दिव्य जन्म कर्म निरन्तर इतिहास की कड़ियां बने रहते हैं।

आचार्य विनोबा के विचारानुसार मानव इतिहास लगभग दस लाख वर्ष पुराना है। उसमें से दस-पांच हजार वर्ष का इतिहास लिखा जा रहा है। वह भी इतिहास नहीं, मानव स्वभाव के विरुद्ध जो काम हुए, उनका विवरण, जिसे पढ़कर इतिहास दुष्कृत्यों से भरा लगने लगता है। सत्ता केन्द्रित लेखन उन मूल्यों को प्रश्रय देता है, जिससे सहजीवन सम्पन्न नहीं होता। यही लेखन संयम केन्द्रित हो तो सत्ता से अधिक सेवा, स्पर्धा से अधिक सहयोग, संग्रह से अधिक त्याग, संहार से अधिक सृजन के भाव समाज में संक्रमित हो जायं। असत् से सत्, अंधकार से प्रकाश, मृत्यु से अमरत्व की ओर अग्रसर भारत की विकास यात्रा मूल्योन्मुखी है। किसी भी युग का प्रभाव उसके मार्ग में अवरोध खड़े नहीं कर सका। सम्राट् संतों के आगे नतमस्तक रहे और सन्त सारे समाज को जीवन मूल्य सिखाते रहे। तख्त, तलवार, तिजोरी वाले भी भारतीय संस्कृति का बीजमंत्र यही मानते हैं :

गोधन, गजधन, बाजिधन और रतनधन खान।
जब आये संतोष धन, सब धन धूरि समान।।

कहा जाता है कि एक आदमी ने ब्रह्मा की आराधना की। ब्रह्मा प्रकटे। उसे इच्छित फल मांगने को कहा। उसने अपना दारिद्र्य दूर करने हेतु चिन्ता मणिरत्न मांगा। ब्रह्मा बोले - जाओ, सामने नदी के किनारे बैठे सन्त से ले लो। वह सन्त के पास पहुंचा। उन्होंने दूर मिट्टी से ढका रत्न दिखाया। धूलि धूसरित रत्न पाते ही उसे लगा कि जिसे पाने के लिए मैंने कठोर तप किया, उसे यह सन्त धूलि मान बैठा, अतः अवश्य कोई इससे भी कीमती चीज इसके पास है। तत्काल चिन्तामणि रत्न फेंक कर वह आदमी संत का शिष्य बन गया। जिस समय भारत में धन को धूलि समान मानने वाले सन्तों का वर्चस्व था, उस समय यूनान में पाइथोगोरस, ईरान में जरथुस्त्र, चीन में कन्फ्यूशियस ने लोगों को सदाचार सिखाया। ग्रीस, आजोनिया, फारस में हेरी क्लिट्स,

प्लेटो, लाओत्से, सुकरात ने भी विलासितापूर्ण जीवन जीने वालों को नसीहतें दी। जिन्हें नसीहतें रास नहीं आयीं, लुटेरे बन गये। ई.पू. चौथी तीसरी सदी में ईरानी, यूनानी लुटेरे भारत आये, सिकन्दर उन्हीं का मुखिया था। पॉल डूसेन नामक एक जर्मन यात्री ऐसा आया कि जिसने भारत दर्शन के दौरान मिले आतिथ्य के प्रति आभार प्रकट करते हुए अपना मन्तव्य दिया और कहा था : "मैंने बाइबिल में पढ़ा था कि अपने पड़ोसियों को अपना ही समझना चाहिए, मुझे उसका हेतु नहीं मिला, परन्तु भारत आने पर आत्मा की एकता का अनुभव हुआ और हेतु भी समझ में आया।" ग्रीक, शक, हूण, यूनानी, फारसी आदि जातियों को भारत ने अपनाया, सभी को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का बोध कराया। परन्तु यह नहीं बताया कि दुनिया के सारे देश बिल्कुल आदिम ढंग की जिन्दगी बसर कर रहे थे, उनके नागरिकों को जानवरों की खालों या पेड़ों की छालों से बेहतर पहनावा नसीब नहीं था, तब भारत से वे अच्छे वस्त्र, मसाला, जड़ी-बूटियां, कल्पवृक्ष (गन्ना), कामधेनु (गाय) आदि अपने जहाजों में भरकर ले गये। भारत की विकास यात्रा बढ़ते-बढ़ते जिस मुकाम पर पहुंची, उस का साक्ष्य वैदिक, जैन, बौद्ध वाङ्मय है। 'युक्तिमद् वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः' की भावना रखकर बाहरी उपादानों से अधिक आन्तरिक परिवर्तनों को केन्द्र में रखने से ही प्राचीनतम इतिहास की गंगोत्री से नवीनतम इतिहास के गंगासागर का ओर-छोर जान सकते हैं तथा नर-नारायण की अस्मिता पहचान सकते हैं।

अतीत के अनुभव, आज की आकांक्षा और अनागत की अपेक्षाएँ सम्मुख रखे बिना यह तथ्य हृदयंगम नहीं होता कि विन्ध्य, हिमाचल, गंगा, यमुना के साथ जलधि तरंगों को राष्ट्रगान में सम्मिलित करने, बाघ को राष्ट्रीय पशु, मयूर को राष्ट्रीय पक्षी, कमल को राष्ट्रीय पुष्प मानने के साथ सांड़ व घोड़े सहित शेरों को राजचिन्ह में क्यों रखा गया एवं क्यों फलक पर 'सत्यमेव जयते' अंकित किया गया। क्यों रोम्या रोला जैसे मनीषी को मानना पड़ा है कि जिन संतों ने हिंसा के मध्य अहिंसा की खोज की, वे न्यूटन से अधिक बुद्धिमान और वेलिंगटन से बड़े योद्धा थे। उन कालजयी योद्धाओं की परंपरा को भारत में किसी ने आश्चर्य से देखा, किसी ने उनका वर्णन किया, किसी ने उनकी अक्षरता को अक्षरों में बांधने का श्रम भी किया, तब ज्ञात हुआ कि वे दुर्विज्ञेय हैं। श्रीमद्भगवद् गीता बताती है :

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेन माश्चर्यवद् वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैन मन्यः श्रृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।।

●

स्वराज्य, ग्राम स्वराज्य और रामराज्य

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के भाषणों और लेखों में तीन शब्द प्रधान हैं :- (1) स्वराज्य, (2) ग्राम स्वराज्य, (3) राम राज्य। इन तीनों शब्दों के मूल में भारतीय जीवन, जीविका और जगत् की जिजीविषा का व्यापक सन्दर्भ है। शब्दों का अर्थ बताते हुए एक बार आचार्य विनोबा ने कहा था कि दूसरे देश की सत्ता अपने देश पर न रहे, तब होता है - स्वराज्य। बड़े नगरों की सत्ता गाँवों पर न रहे, तब होता है - ग्राम स्वराज्य। गाँवों में झगड़े न हों और अपना सारा व्यवहार प्रेम, निर्भयता, ज्ञान, उद्योग एवं स्वच्छता से होने लगे, तब होता है - रामराज्य। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान मजदूर, किसानों का शोषण रोकने हेतु गाँधीजी ने कहा था कि "अगर हिन्दुस्तान को सच्ची आजादी पाना है और हिन्दुस्तान की मार्फत दुनिया को भी, तब आज नहीं तो कल, हमें गाँवों में रहना होगा। कई करोड़ आदमी शहरों और महलों में सुख से नहीं रह सकते, न वे एक-दूसरे का खून करके ही रह सकते हैं। इसलिए मैं सोचता हूँ कि खेती, गोपालन और अन्य सब ग्रामीण उद्योगों को फिर से बसाऊँ, जिससे गाँव-गाँव गोकुल बन जाएं।"

आज सत्ता का केन्द्र दिल्ली है या कोलकाता, मुम्बई, चेन्नई, पटना, लखनऊ जैसे प्रादेशिक सरकारों की राजधानी बने दो-ढ़ाई दर्जन शहर। गाँधीजी इन केन्द्रों की सत्ता भारत के सात लाख गाँवों में विकेन्द्रित कर देना चाहते थे। विकेन्द्रीकरण का उनका दर्शन स्वदेशी, स्वावलंबन, स्वाभिमान, सामुदायिक विकास और सत्य पर प्रतिष्ठित था। जिसका मूलाधार था- गाँवों में बसा भारत। गोकुल गांवों का प्रतिनिधि था, जिसकी धड़कन थे- ग्वाल-बाल, गोपाल। श्रीकृष्ण गोपालक थे। बलदेव हलधर (किसान) थे। खेतों की क्यारियों का पानी रोकने हेतु मेड़ बनने वाला आरुणि, बीमार बूढ़ी गायों को स्वस्थ और संवर्धित करने वाला सत्यकाम, कपास से कपड़ा बनाने की कला आविष्कृत करने वाला गृत्समद और 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' गाने वाला कबीर इत्यादि गांवों में ही पैदा हुए थे। वैसे धर्म-कर्मपरायण ग्राम्यजनों के कला-कौशल की प्रशंसा दुनिया भर में हुई। उसी के आकर्षण से विदेशी खिंचे आये। अंग्रेज, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, डच, स्पेनी, चीनी आदि से प्रशंसित होकर हम अपनी अस्मिता को भूल गये! उसका लाभ उठा कर मुगलों ने हमारे (कारीगरों के) हाथ काटे और अंग्रेजों ने उंगलियां। सिकन्दर से क्लाइव तक के इतिहास पृष्ठों में कृषि, गोपालन, ग्रामोद्योग और गाँवों को उजाड़ने की करुण कथाएं हैं। हर शासक उसका एक पात्र है। माना

जाता है कि ईश्वर ने गाँव बसाये और इन्सान ने नगर। नगरीकरण को व्यवस्थित करने वाली पहली नगरपालिका भारत में सन् 1880 में बनी। नगरों के मायाजाल ने ग्राम व्यवस्था, जिसके खादी, चक्की आदि ग्रामोद्योग अंग थे, को छिन्न-भिन्न कर दिया। कपड़ा, आटा, चावल, तेल सब कुछ मशीनों की स्पर्धा के आगे मंहगे लगने लगे। तब गाँधीजी ने ग्राम रचना को व्यापंक परिवेश में प्रस्तुत करते हुए 2 अगस्त 1942 को लिखा : "ग्राम स्वराज्य की मेरी कल्पना में गाँव एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम जरूरतों के लिए, जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा, वह परस्पर सहयोग से काम लेगा।"

स्वतंत्रता आन्दोलन के नायक के रूप में गाँधीजी ने हमें समझाया कि भारत अपने चंद शहरों में ही नहीं, बल्कि लाखों गाँवों में बसा है। लेकिन शहर वालों का ख्याल है कि भारत शहरों में ही है और गाँवों का निर्माण शहरों की जरूरतें पूरी करने के लिए हुआ है। शहर गाँवों की सारी दौलत खींच लेते हैं। मेरी योजना के अन्तर्गत ऐसी कोई चीज शहरों में नहीं बनने दी जायेगी, जो उतनी ही अच्छी तरह गाँवों में बनायी जा सकती है। हमें अपनी रोजमर्रा की आवश्यकताएं गाँव की बनी चीजों से ही पूरी करनी चाहिये। जहाँ यह मालूम हो कि अमुक चीजें गाँव में मिलती ही नहीं, वहाँ हमें यह देखना चाहिये कि उन चीजों को थोड़े परिश्रम और संगठन से बनाकर गाँव वाले उनसे कुछ मुनाफा उठा सकते हैं या नहीं? मुनाफे का अंदाज लगाने में हमें अपना (निजी) नहीं, किन्तु पूरे गाँव का ख्याल रखना चाहिये। संभव है कि शुरू में साधारण भाव से कुछ अधिक देना पड़े और चीज हल्की मिले, पर आग्रह रखें कि वे बढ़िया चीजें तैयार करें। हम आग्रह ही न रखें, वरन् उन लोगों को पूरी मदद भी दें तो यह हो नहीं सकता है कि गाँवों में बनी चीजों में दिनोंदिन तरक्की न होती जाये।

प्राथमिकता रेखांकित करते हुए महात्मा गाँधी ने समझाया कि हर गाँव अपने भोजन के लिए फसलें तथा कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। फिर जमीन बचे तो नगदी आमदनी के लिए उपयोगी खेती की जा सकती है। लेकिन गांजा, तंबाकू, अफीम वगैरह की खेती से बचे। पानी के लिए गाँव का अपना इंतजाम रहे। वाटर-वर्क्स हो, जिससे गाँव के सभी लोगों को शुद्ध पानी मिले। कुओं और तालाबों पर गाँव का पूरा नियंत्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। गाँव की झोपड़ियों में पर्याप्त प्रकाश और हवा का प्रबंध हो। उनके निर्माण में जिस सामान का उपयोग हो, वह ऐसा हो, जो गाँव के आसपास पाँच मील की त्रिज्या के अन्दर आने वाले प्रदेश में मिल सके। झोपड़ियों में आंगन या खुली जगह हो, जहाँ उस घर के लोग अपने उपयोग के लिए सब्जियाँ और फल पैदा कर सकें। गाँव में कवि हों, चित्रकार हों,

शिल्पी हों, भाषा के पंडित हों, शोध करने वाले लोग भी हों। थोड़े में जिन्दगी की ऐसी कोई चीज नहीं हो, जो गाँव में न मिले। गाँव का शासन चलाने के लिए एक-एक साल के लिए हर गाँव के पाँच आदमियों की एक पंचायत चुनी जाये। इसके लिए नियमानुसार एक खास निर्धारित योग्यता वाले गाँव के बालिग स्त्री-पुरुषों को अधिकार हो कि वे अपने पंच चुन लें। गाँव के हर एक व्यक्ति के लिए ग्रामरक्षा की सेवा अनिवार्य हो। उसका एक रजिस्टर रखा जाये, जिसमें से रक्षक बारी-बारी से चुने जायें।

गाँधीजी को विश्वास था कि एक हजार की आबादी वाले गाँव को अगर स्वावलम्बन के आधार पर संगठित किया जाय तो गाँवों में बुनियादी आवश्यकता की चीजें बन सकती हैं। जो नहीं बन सकतीं, वे चश्मा, थर्मामीटर, लाउडस्पीकर जैसी चीजें शहरों में बनें। शहरों में यन्त्रों से वे ही सामान बनाये जायँ, जो विदेशों से आते हैं। स्वदेशी उत्पाद बढ़ाने में इस तरह गाँव और शहर परिपूरक हो सकते हैं। इस काम में पंचायतें भी प्रभावी भूमिका अदा कर सकती हैं। भारतीय शासन-व्यवस्था की पंचायतें अंग रही हैं। जनता 'पंच परमेश्वर' मानकर पंचों के निर्णय शिरोधार्य करती थीं। इसी कारण चार्ल्स मेटकाफ के अध्ययन में भी यही लिखा गया था कि "भारत में राज्य बदले, एक शासन प्रणाली का अंत हुआ, दूसरी का प्रादुर्भाव हुआ, कितने ही आक्रमणकारी आये, किन्तु भारत की इन ग्राम पंचायतों में वह शक्ति थी कि वे सारे परिवर्तनों के बीच स्थिर बनी रहीं।" मुगलों ने पंचायत व्यवस्था में विशेष दखल नहीं दिया, किन्तु अंग्रेजों ने उसे नष्ट-भ्रष्ट किया। इस कारण गाँधीजी ने 20वीं सदी के मध्य में पंचायत का नया संस्करण प्रस्तुत किया, आखिरी वसीयतनामा में उसी की झलक है।

1. गाँव वाले या ग्रामीण मनोवृत्ति वाले पाँच वयस्क पुरुषों या स्त्रियों की बनी हुई हर एक पंचायत एक घटक हो।
2. पास-पास की ऐसी हर दो पंचायतों की, उन्हीं में से चुने हुए नेता के मार्गदर्शन में काम करने वालों की, एक मंडली बने।
3. पंचायतों में ऐसे जोड़ कायम रखना तब तक जारी रखा जाये, जब तक कि वे पूरे हिन्दुस्तान को न ढक लें।
4. पहले दर्जे के नेता अपने में से दूसरे दर्जे का एक-एक नेता चुनते जाएं, जो सारे हिन्दुस्तान के लिए सम्मिलित रीति से काम करें और अपने-अपने प्रदेशों में अलग-अलग काम भी करें।
5. जब जरूरत मालूम हो, तब दूसरे दर्जे के नेता अपने में से एक-एक मुखिया चुनें।

वे मुखिया चुनने वाले चाहें, तब तक समूहों को व्यवस्थित करके उनका मार्गदर्शन करें।

15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। 26 जनवरी 1950 को विभाजन की वेदना भूलकर भारतीयों ने तहेदिल से स्वीकार किया कि हम भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, उसके समस्त नागरिकों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता, न्याय, विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म की उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उनमें व्यक्ति की गरिमा, राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए भारतीय संविधान के तहत कार्य करेंगे। 562 राजाओं ने उस संविधान को शिरोधार्य कर लिया, किन्तु संविधान निर्माताओं ने लाखों गाँवों का गणराज्य बनाने का गाँधी विचार बिसार दिया और संविधान के अनुच्छेद 40 के द्वारा पंचायत का संगठन राज्य सरकारों के अधीन हो गया।

स्वतंत्र भारत में कहने को सभी नागरिक बराबर हैं और राष्ट्रपति से लेकर रघुवा तक को एक-एक वोट देने का अधिकार दिया, लेकिन दोनों की आमदनी असमान रही। सेवा की आड़ में शान दिखाने वालों ने सादगी का मूल्य नष्ट कर दी। जहाँ हमें निर्धन होने का गम नहीं था और धनवानों को अमीरी दिखाने में लज्जा आती थी, वहाँ जीवन स्तर उठाने वाले हमारी निर्धनता को कोसने लगे। उनके कीमती पहनावे ने हमें नंगा कर दिया, आकाश को छूने वाली उनकी इमारतों ने हमारी झोपड़ियाँ लील लीं। 100 में से 54 लोग अत्यन्त गरीबी में जीने को विवश हुए। 100 में से 74 परिवारों के पास औसत से कम भूमि रह गयी। डेढ़ करोड़ परिवार भूमिहीन तथा 7 करोड़ परिवार बेघर रहे। दुर्बल और दस्तकारों की हालत बिगड़ी। लोग भाग-भाग कर शहर पहुंचने लगे। बड़े और मंझले उद्योगों में केवल 100 में से 5 लोगों को काम मिला। शेष लोग न घर के रहे, न घाट के। उनके साथी मुम्बई, कोलकाता, दिल्ली, चेन्नई की पटरियों पर रात काटने लगे। सवा दो करोड़ मलिन बस्तियों में आश्रय पाये, व्यसन, गुंडागर्दी और नाना अपराधों की विषबेल फली-फूली। वर्ग संघर्ष के चलते रक्तपात हुआ। वर्ग निराकरण के लिए आचार्य विनोबा ने भूदानमूलक, ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रांति का शंख फूँका।

अहिंसक क्रान्ति के फलस्वरूप भूमिवानों ने बेजमीनों के लिए भूमि दी, संपत्ति वालों ने साधन दिये। कारीगरों को रोजगार, महिलाओं को सम्मान, बच्चों को पोषण और नागरिकों को उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने के अवसर मिले। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने यही सब देखकर कहा था कि भारत के शानदार भविष्य के लिए हम गरीबी

खत्म करें। अज्ञान मिटाकर सबको काम दें। भारत की जनता अमन पसन्द है। वह प्रेम और सहयोग की तमन्ना रखती है। अगर यह बात सही है तो मेरा विश्वास है कि हम सब लोग पासा पलट सकते हैं, यानी देश में आपसी संघर्ष को सहयोग में बदल सकते हैं और दुनिया में भी जंग की जगह अमन कायम किया जा सकता है।

भारत सरकार ने आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया और सहकारिता मंत्रालय के अन्तर्गत सामुदायिक विकास की योजनाएँ शुरू कीं, लेकिन अनुभव यह आया कि आत्म निर्भरता घटी और सरकार निर्भरता बढ़ी। तब संसदीय व्यवस्था के अन्तर्गत पंचायती (1959) राज की त्रिस्तरीय व्यवस्था का प्रारूप सामने आया। पंचायत राज एवं सहकारिता मंत्री श्री सुरेन्द्र कुमार डे ने समिति गठित की, जिसने सिफारिश की कि पंचायत राज संस्थाओं को अपने स्तर पर स्वशासन की इकाई मान लेना चाहिए। वे विकास कार्यों को क्रियान्वित करने के लिए राज्य सरकारों की एजेंसियों के रूप में कार्य कर सकती हैं। जनवरी 1964 में अखिल भारत पंचायत परिषद के उदयपुर अधिवेशन में लोकनायक जयप्रकाश ने माँग की कि वे स्वायत्त सरकारें हो। "इसके पश्चात् पंचायतराज कानून की समीक्षा हुई और 1989 में 64वां संशोधन तथा 1991 में 73वां संशोधन पेश हुआ। संसद द्वारा पारित होने पर पंचायतराज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता मिली। महिलाओं, अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं अत्यन्त पिछड़े वर्गों के लिए स्थान आरक्षित कर पंचायतराज चुनाव कराये गये। 2.20 लाख पंचायतें, 5.500 पंचायत समितियां तथा 375 जिला परिषदें बनीं, जो स्वशासन की इकाई मान ली गयीं।

संविधान के संशोधन से मिला पंचायत को अधिकार।
सबकी रोजी रोटी हेतु मिल कर करें, सभी विचार।।
गाँव की योजना गाँव का न्याय, गाँव में निर्णय का अधिकार।
कार्यपालिका, न्यायपालिका, ग्राम स्तरों पर करे सुधार।।

पंचायतों को कृषि, भूमि सुधार, लघु सिंचाई, वृक्षारोपण, पशुपालन, ग्रामोद्योग, बुनियादी शिक्षा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण सहित 30 कार्यों की जिम्मेवारी सौंपी गयी। वे कुआं, तालाब, सड़क बना सकती हैं। साक्षरता बढ़ा सकती हैं। पानी, अनाज, मिट्टी का तेल आदि का प्रबंध एवं गोशाला-गोचर भूमि आदि की अनुकूलता कर सकती हैं। ग्रामसभा, ग्रामोद्योग, न्याय पंचायत आदि के कर्तव्य और अधिकारों की व्याख्याएं और धाराएं प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनके आधार पर पंचायतें चाहें तो परंपरागत हुनर और उपेक्षित संसाधनों का यथेष्ट उपयोग कर सकती हैं। अप्राकृतिक उत्पादों की जगह बुनियादी आवश्यकता की चीजों को बढ़ावा दें तो रोजी-रोटी के

अवसर भी बढ़ सकते हैं। गन्ने के रस की जगह कोका कोला, दूध मट्ठा की जगह चाय, दातून की जगह टूथपेस्ट को प्रोत्साहन देते रहने से ग्रामीण उत्पादों को प्रश्रय कैसे मिलेगा? 1918 में 60 करोड़ रुपये मूल्य का विदेशी कपड़ा भारत आया तो गाँधीजी ने कहा था कि इतनी बड़ी रकम से हमारे कातने-बुनने वाले लोग वंचित हो गये। हर गाँव के घर-घर में चलने वाली जिनिंग मशीनें (चर्खा) और ग्रामोद्योग अपने आप नहीं मरे, उन्हें मारा गया। इसी कारण प्रथम पंचवर्षीय योजना की टीका करते हुए विनोबा जी ने पंडित जवाहर लाल नेहरू से कहा था कि आपने देहातियों से कपड़े का धंधा छीन लिया और मिलें खोलीं। तेल घानियां छीन लीं और तेल मिलें खड़ी कीं। गुड़ का धंधा छीनकर चीनी मिलें लगा दीं। उस बात से सबक लें और जहां कपास होती है, वहीं कपड़ा बनायें, तिलहन होती है, वहीं तेल निकालें। गन्ना होता है, वहीं गुड़ बनायें। पटसन होती है, वहीं रस्सी बनायें। कच्चे माल को गाँव में ही पक्का बनाने की अनुकूलता पंचायत राज कानून ने कर दी है। अब कपड़ा, जूता, साबुन, तेल, बर्तन, हल, कुदाल, फावड़ा, बाल्टी, घरेलू सामान इत्यादि गाँव में ही बनने लग जायें तो गाँव की शक्ति, गाँव की लक्ष्मी और गाँव की सरस्वती सुरक्षित रहेगी। गाँधी ग्राम, अम्बेडकर ग्राम, ग्रामदानी ग्राम और गोपालग्राम संकुलों में इस तरह के प्रयोग और प्रशिक्षण हो सकते हैं और उन्हें आदर्श ग्राम बनाया जा सकता है।

राज्य सरकारों से भारत गणराज्य के अन्तर्गत ग्राम सभाओं को ग्राम स्वायत्तता के अधिकार सौंपने की माँग गाँधीवादी संगठन कर रहे हैं, जिसमें 9 बिन्दु मुख्य हैं --

1. गाँव की सीमा के अन्दर के जल, जंगल, जमीन व लघु खनिज आदि की व्यवस्था, उपयोग तथा उनके रक्षण-पोषण आदि की सारी सत्ता ग्रामसभा को मिलनी चाहिए। बाहर की योजना के लिए गाँव की भूमि का अधिग्रहण या अन्य साधनों का उपयोग गाँव की सम्मति से हो।
2. जमीन के राजस्व रेकार्ड ग्रामसभा को सौंपे जाएं और संबन्धित मामलों में ग्रामसभा का निर्णय मान्य हो।
3. गाँव की योजना बनाने का और उसे अमल में लाने का अधिकार ग्रामसभा को होना चाहिए।
4. गाँव के काम के लिए रखे गये विभिन्न कर्मचारियों पर ग्रामसभा की देख-रेख तथा नियंत्रण हो।
5. केन्द्र एवं राज्य सरकार गाँव के लिए जो कोई योजना बनाये उसका क्रियान्वयन ग्रामसभा के मार्फत होना चाहिए।

6. गाँव में होने वाले आयात-निर्यात के नियंत्रण का अधिकार ग्रामसभा को होना चाहिए।
7. प्रदेश का शासन, न्याय, शिक्षण आदि सब काम मातृभाषा में होने चाहिए।
8. सरकार गाँवों में शराब की बिक्री बंद करे।
9. ग्रामसभा के विकास की योजना को अमल में लाने तथा गाँव का कारोबार चलाने के लिए केन्द्र सरकार और राज्य सरकार की आय का 50 प्रतिशत हिस्सा गाँव की जनसंख्या के अनुपात में ग्रामसभा को मिलना चाहिए।

इस तरह स्थानीय समस्याओं, सामाजिक चुनौतियों और राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुसार पंचायती राज को ग्राम स्वराज्य की दिशा में अग्रसर करने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई है। पंचायतें पांच व्यक्ति की समिति बनने एवं ग्रामसभा प्रभावी बनाने के साथ ही प्रेम, निर्भयता, ज्ञान, उद्योग एवं स्वच्छता के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने लग जायें तो वे देश की दिशा व दशा बदल सकती हैं। यह बदलने के लिए गाँधीजन सक्रिय हैं, जो जिन्हें रामराज्य अभीष्ट है।



आजादी की वर्दी और उपासना वर्दी

दक्षिण अफ्रीका में ब्रिटिश सत्ता भारतीयों को 'कुली' कहती थी। वहां कुली का अर्थ था - ढेढ। इसे पंचम जाति परिचायक शब्द माना जाता था। जो जगह भारतीयों को रहने के लिए दी जाती, वह 'कुली लोकेशन' कहलाती थी। रहने वालों को जमीन पट्टे पर मिलती थी। उनके लिये म्युनिसिपैलिटी कोई सुविधा नहीं करती थी। फिर ऐसा समय आया कि उनकी गंदगी को निमित्त बनाकर लोकेशन को नष्ट करने का अधिकार धारा सभा ने सफाई विभाग को दे दिया। उनकी सहायता में 'कुली बैरिस्टर' मोहनदास करमचंद गांधी खड़े हुए। उन्हें लगा कि वे मनुष्य के नाते और एक भारतीय के नाते अधिकार तभी पा सकते हैं, जब अन्याय का अहिंसक प्रतिकार करना सीखें। इसके लिये अन्यायी के साथ सहयोग करना बन्द कर दिया और अन्याय करने वालों ने जितनी यंत्रणा दी, वह झेली। यह मानकर कि अन्यायी से असहयोग करना उतना ही आवश्यक है, जितना आवश्यक कर्तव्य अच्छाई से सहयोग करना है। इस तरह दोहरी भूमिका का निर्वहन करने वाली प्रक्रिया 'सत्याग्रह' कहलायी। 11 सितम्बर 1906 को आरंभ सत्याग्रह ने निहत्थों, निर्बलों को मनुष्य के नाते मनुष्य के अधिकार पाने की ऐसी तकनीक सिखा दी, जिसके आगे शस्त्रधारी व सत्तासीन हतप्रभ हो गये।

1906 से 1914 तक दक्षिण अफ्रीका और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम सैनिकों ने अहिंसक शस्त्र के रूप में सत्याग्रह प्रयुक्त किया, लेकिन 1920 में जलिया वाला बाग हत्याकांड आदि से भड़की जनता हिंसा पर उतर आयी और गांधीजी को उत्तरदायी मानकर सरकार ने उन पर राजनीति को भ्रष्ट करने का आरोप लगाया। अहमदाबाद स्थित शाहीबाग के सर्किट हाउस में 18 मार्च 1922 को आरोप सुनाने के बाद न्यायाधीश ने उनसे पूछा कि क्या आप अपना अपराध स्वीकार करते हैं? हामी भरते हुए गांधीजी बोले : "मेरी इच्छा इस न्यायालय से इस तथ्य को छिपाने की कत्तई नहीं है कि मौजूदा शासन व्यवस्था के प्रति अप्रीति की भावना का प्रसार करने की मुझे धुन सवार हो गयी है। मैं हिंसा से बचना चाहता था और बचना चाहता हूं। मुझे दो में से एक चीज चुननी थी। मैं या तो ऐसी व्यवस्था को स्वीकार कर लेता, जिसने मेरी समझ से देश को अपूरणीय क्षतिं पहुंचायी है या फिर मैं यह खतरा मोल लेता कि मेरे देशवासी जब मेरे मुंह से सच्चाई को समझेंगे तो उनमें रोष का उन्माद उमड़ सकता है। मैं जानता हूं कि मेरे देशवासी कभी-कभी उन्मत्त हो उठते हैं। मुझे इसका बहुत दुःख है। इसलिये कानून की दृष्टि से जो एक सोच-समझकर किया गया अपराध है, उसके लिए बड़ी से बड़ी सजा मैं खुशी से स्वीकारने को तैयार हूं।"

गांधीजी ने न्यायालय को बताया कि "मुझ जैसे राजभक्त को राजद्रोही क्यों बनना पड़ा? अंग्रेजी हुकूमत ने राजनीतिक और आर्थिक दोनों दृष्टियों से भारत को असहाय बना दिया है। मेरे ख्याल से मानव जाति के विरुद्ध किये जा रहे इस अपराध जैसी इतिहास में शायद ही कोई मिसाल मिले। मैं अपने देशवासियों को यह दिखाने की कोशिश कर रहा हूं कि हिंसावृत्ति से किया गया असहयोग अंत में बुराई को बढ़ाने में ही सहायक होता है। कानून की दृष्टि में जान-बूझकर किया गया अपराध मेरी दृष्टि में नागरिक के नाते मनुष्य का सर्वोपरि कर्तव्य है।"

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान गांधीजी ने अपने जीवनकाल में 15 बार सत्याग्रह किये और आखिर अंग्रेज भारत को आजाद कर गये। आजादी की कहानी के उतार-चढ़ाव की घटनाएं इतिहास के पृष्ठों में अंकित हैं और देशवासी भी गांधी का गौरव-गीत गाते हैं :

दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल।
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।।

लेकिन मूल प्रश्न जहां का तहां खड़ा है कि क्या हम भारतवासी हिंसावृत्ति त्याग पाये? गांधी ने सीधी बात कही थी : "यह आवश्यक नहीं है कि आततायी को रोकने के लिये पहले पशुत्व प्रदर्शित करें और फिर बन सकें तो इन्सान बनें?" इन्सानियत के निमित्त जिनका जीवन अर्पित होता है, वे ही समाज, देश, दुनिया को उन सभी बुराइयों से मुक्ति दिला सकते हैं, जिनसे वे पीड़ित हैं। पीड़ितों को राहत पहुंचाने हेतु संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य देशों ने गांधी जयन्ती 'अहिंसा दिवस' के रूप में मनायी, तब अनिवार्य हो गया है कि हम गांधीजन अपनी निष्ठा से हिंसा में रस लेने वाली मानसिकता बदलें। हिंसामय वातावरण को अहिंसामय बनाना पुरुषार्थ है और परमार्थ भी। आततायी/अपराधी से असहयोग करके हम आजादी ले सके, लेकिन सामाजिक न्याय तथा समुदाय के अन्तर्गत मानव की रक्षा करने में विफल रहे। हमने एक दूसरे को तोड़ने वाली शक्तियों को व्यक्ति, समाज, देश और दुनिया को जोड़ने की दिशा में उन्मुख नहीं किया। सत्याग्रह की चर्चा के साथ अर्चा किये बिना सत्याग्रह की प्रासंगिकता कैसे सिद्ध हो? अन्तर्राष्ट्रीयता तभी संभव है, जब राष्ट्रीयता यथार्थ बन जाये और लोग अपने को संगठित कर 'एक नेक' रहते हुए पारस्परिकता बढ़ायें। एक दूसरे का शोषण करने वाली जीवन शैली ने सत्याग्रह के समक्ष जो चुनौतियां प्रस्तुत की हैं, आज के संदर्भ में उन्हें स्वीकारने का साहस हमें करना ही होगा।

सत्याग्रह शताब्दी समारोह का शुभारंभ आचार्यकुल ने 11 सितम्बर 2006 वाराणसी में किया, उस समय आत्महत्या करने को विवश किसान, बुनकरों के लिये

ईमान की रोटी इज्जत की जिन्दगी सुरक्षित रखने का श्री गणेश हुआ। जैसे स्वतंत्रता संग्राम में 'आजादी की वर्दी' अन्याय का प्रतिकार करने का साधन बनी, वैसे हमने उपासना वर्दी तैयार कराकर उत्पादकों के सत्प्रयास में सहकार किया। सुमति की तानी और शान्ति की बानी से समग्र विकास समिति, लहरतारा उपासना वस्त्र बनाने लगी। वैदिक, जैन, बौद्ध, सिक्ख, ईसाई, मुस्लिम, बहाई धर्म सम्प्रदायों के उपासक-उपासिकाओं की धर्म समन्वय सभा कर निवेदन किया कि आप मंदिर, मस्जिद, गिरजा, गुरुद्वारा या धर्मस्थानक में उपासना करते समय जैसी वर्दी चाहें, वैसी बनाने की अनुकूलता है। समता साड़ी, दया दुपट्टा, धीरज धोती, करुणा कम्बल का उत्पादन हो रहा है। पड़ोसी की प्रतिष्ठा, उत्पादन की गुणवत्ता, विपणन की प्रामाणिकता और न्यायोचित पारस्परिकता को प्रश्रय मिला है। उत्पादन वस्त्र से प्राप्त प्रति रुपये में से 32 पैसे किसान-मजदूर, 32 पैसे कतवार-बुनकर, 16 पैसे कारीगर और 20 पैसे व्यवस्था-विपणन में समायोजित हों – इसी दृष्टि से खादी सभा, सर्वोदय समाज, स्वदेशी जागरण मंच का ध्यान आकृष्ट किया गया है। धर्माचार्यों से निवेदन किया गया है कि आप खादी या मिल की वर्दी अपने-अपने क्षेत्र के पड़ोसी से बनवायें तो आचार्यकुल प्रशिक्षण में सहयोगी बन सकता है। जैविक उत्पाद और पर्यावरण संतुलन में जागरूकता पैदा होने एवं धार्मिक सद्भाव, सामाजिक समरसता बढ़ाने में भी इससे मदद मिली। सुरभि ग्राम संकुल में हमारे शिक्षा सेवा प्रकल्पों की उपलब्धि देखकर राष्ट्रसंत मुरारी बापू ने 18 नवम्बर 2006 को अपनी प्रेमकथा में कहा कि यह भूख, भीख, भय, भूल परिमार्जन का अनुपम प्रयोग है। सुरभि शोध संस्थान द्वारा तैयार खादी का उपासना वस्त्र हमारे अनेक सहयोगी पहन रहे हैं। 10 अंबर चर्खों पर कते सूत से 16.324 मीटर कपड़ा मिला। 25 कतवार तथा 10 बुनकर परिवार के कुल 75 लोग रोजगार पाये। किसान-बुनकर-मजदूर को अपनी मेहनत का उचित मूल्य मिलने लगे तो आपसदारी बढ़ेगी, फिर वे न आत्महत्या करेंगे, न आतंकवादी बनेंगे। गत वर्षों में किये गये कार्यों से बम धमाकों में शिकार लोगों की सेवा हुई, आपदा ग्रस्त लोगों तक राहत पहुंची, विश्वविद्यालयों में हिंसा से मिल रही चुनौतियों का सामना करने हेतु अध्ययन, अध्यापन, संवाद, सेमिनार हुये, पर्यावरण संतुलन की बहुआयामी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला। अच्छे कार्य, अच्छे व्यक्ति, अच्छे उत्पाद और अच्छी सोच को प्रोत्साहन दिया गया।

आज हर क्षेत्र समस्याग्रस्त है। अपराध बढ़ रहे हैं, ऐसी स्थिति में पूर्वांचल विश्वविद्यालय स्वयंसेवी संगठन तथा प्रशासनिक अधिकारियों के सहयोग से उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत जौनपुर जिले के 380 गाँव ऐसे चिन्हित किये गये, जहां पिछले दशकों में अपराध पंजीकृत नहीं हुए। राजस्थान के बीकानेर जिले के 43 गांवों में 5 वर्ष से, 6 गांवों में 4 वर्ष से और 7 गांवों में 3 वर्ष से किसी तरह के आपराधिक मामले पुलिसथानों

में दर्ज नहीं हुए। ऐसे अपराधमुक्त गांवों की खोज कर उन्हें गांधी ग्राम, अम्बेडकर ग्राम, सुरभि ग्राम, गोपाल ग्राम के रूप में विकसित करने का सुझाव सरकारों को भेजा गया। यह है – सत्याग्रह का विधायक पक्ष। 22 फरवरी 1989 को जयजगत सेवा संस्थान की ओर से संयुक्त राष्ट्रसंघ को लिखा गया कि संत विनोबा भावे के सुझावानुसार आप विश्व शांति सेना खड़ी करें तो भारत में अहिंसक समाज रचना के प्रति प्रतिबद्ध हमारी संस्थाएं एक लाख शांति सैनिक खड़े करने की जिम्मेवारी ले सकती हैं।

सत्याग्रह से लोगों को धर्म, नीति, एकता और अच्छाई से सहयोंग करने की नसीहत मिली। लेकिन उसे हम भूल गये। तब समाज की शान्ति और सुरक्षा करने में शस्त्र सम्पन्न सरकारों की विफलता और एक दूसरे की कीमत पर विकास करने तथा दूसरों के शोषण पर पोषण पाने की व्यग्रता देखकर 20वीं सदी में 53 नोबेल पुरस्कार विजेता मनीषियों ने एक संयुक्त घोषणापत्र प्रसारित कर दुनिया के सभी सद्भावना सम्पन्न लोगों से अपील की थी कि 'प्रत्येक व्यक्ति अपनी हैसियत में दुनिया के ऐसे लोगों की जीवन रक्षा के लिए कदम उठाये, जो भूख एवं अर्ध-विकास से पीड़ित हैं।'

वैज्ञानिकों को गांधी के अहिंसक कार्यक्रम की याद इसलिए आयी कि गांधी ने उस जीवन पद्धति, जीविका पद्धति और जगत रक्षा पद्धति का विकल्प दिया, जिसका आधार हिंसा है। हिंसा में आस्था रखने वालों को आखिर सुमति आयी और इस वर्ष जागतिक स्तर पर गांधी जयन्ती अहिंसा दिवस के रूप में आयोजित हुई, तब समवेत स्वर उभरा :

असतो मा सद्‌गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय।

असत् से असहकार करने की भाव भूमि आजादी की वर्दी ने प्रशस्त की, वैसे ही उपासना वर्दी को सत् में सहकार देने का साधन बनना है। यह काम गरीबों को राहत देने या मोर्चा लेने के लिए उन्हें रैलियां करने को प्रेरित करने से नहीं हो सकता। इसके लिये उनको उत्पांदन के साधन देकर, उन्हें उत्पादन में भागीदार बनाने एवं उनमें श्रमनिष्ठा, ज्ञाननिष्ठा, समाजनिष्ठा पैदा करने की जरूरत है। सामाजिक न्याय तथा समुदाय के अन्तर्गत आम आदमी की अस्मिता बचाने का यही मार्ग है, जिस पर चलकर गांधीजी ने कहा था : "हम अपने स्वर्णिम अतीत को याद कर आगे नहीं बढ़ सकते, जब तक कि उस गौरवमय इतिहास का पुनरुद्धार न कर लें। वीरों की सन्तान और महर्षियों के उत्तराधिकारी उस विरासत को शोभान्वित करें, तभी भौतिक और आध्यात्मिक जगत में नये अध्याय जुड़ सकते हैं।" ●

अहिंसा की ओर बढ़ते कदम

अहिंसा जीवन का ऐसा रास्ता है, जिस पर सारी मनुष्य जाति स्वभावतः, किन्तु अनजाने आ रही है – ऐसी आस्था रखने वाले राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की 138वीं जयंती इस वर्ष संसार के लगभग 190 देशों में अहिंसा दिवस के रूप में आयोजित हो रही है। माँ की ममता, पिता का वात्सल्य, पड़ोसी के साथ पारस्परिकता और मानव-मानव की मैत्री से पोषित अहिंसा की परिधि में मानवेतर प्राणियों – पशु-पक्षी, नदी-पर्वत प्रकृति-पर्यावरण के प्रति अभिव्यक्त संवेदना भी समा गयी है। लेकिन हिंसा में रस लेने वाली मानसिकता बदले बिना अहिंसा की भक्ति नहीं हो सकती। उसके लिए अहिंसाप्रियता को अहिंसा निष्ठा में परिवर्तित करने की जरूरत है। सामान्य श्रद्धा जब अन्तर्निष्ठा बनती है, तभी कृत निश्चय भक्ति का उत्स बनता है। वही भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन तथा संस्कृति के रूप में शान्ति को पोषित करता है। महात्मा गांधी के शब्दों में यदि जीवन अशान्तिप्रिय होता तो अब तक एक भी आदमी जिन्दा न बचता। हम आपस में मेल मोहब्बत से रहकर ही जिन्दगी गुजारते हैं।

अहिंसक दृष्टि एवं सृष्टि परिभाषित करते हुए एक बार विनोबाजी ने समझाया था कि विज्ञानवेत्ता सृष्टि को जड़ मानते हैं और आत्मवेत्ता चेतन। वैज्ञानिक का लड़का पेड़ को पानी देता है और उसके फल खाता है, वैसे ही आत्मवेत्ता का लड़का करता है। लेकिन जब लड़का पेड़ पर प्रहार करता है तो वैज्ञानिक केवल देखता है, किन्तु आत्मवेत्ता को अनुभव होता है कि हिंसा हो रही है। वह लड़के को प्रहार करने से रोकता है। अहिंसा दिवस पर ऐसे रोकने की प्रक्रिया प्रारंभ कर हिंसा में रस लेने वाली मानसिकता रूपान्तरित करने का प्रयास होना चाहिये। बिना रूपान्तरण के लोग अहिंसा को मानेंगे, अहिंसा निष्ठ नहीं रहेंगे। वैदिक ऋषि-मुनि जैन, बौद्ध, साधक, सिद्ध, सुजान अहिंसा की साधना करने के लिये ध्यान धारणा, जप-तप, स्वाध्याय, समाधि मग्न रहे। अवतारों, तीर्थंकरों, बोधिसत्वों की श्रुति-स्मृति से इतिहास लोक हृदयों में संक्रमित हुआ। इतिहासकार लोककथाओं, लोकगीतों और लोक भावनाओं को पढ़ नहीं पाते, पढ़ें भी तो कैसे? आचार्य विनोबा के आकलनानुसार मानव इतिहास लगभग 10 लाख वर्ष पुराना है, जबकि इतिहास लेखन अधिक से अधिक 10 हजार साल की समयावधि में सिमटा है। वह भी इतिहास नहीं है, मानव स्वभाव के विपरीत हुए कार्य ही लेखबद्ध हैं। उसे पढ़कर इतिहास दुष्कृत्यों से भरा लगने लगता है। सत्कृत्यों को पोषण नहीं मिलता। आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि वृत्तियां पशुओं के

समान होते हुए भी सत् वृत्तियों से प्रेरित मानव जाति तप, संयम, परोपकार, परमार्थ को जीवन मूल्य मानती है। यही उसकी विशेषता है, जिसे इतिहास लेखक उजागर करते तो शांति की संस्कृति समृद्ध होती और सांस्कृतिक जीवन अन्तर्विरोधों का घर नहीं बनता। यह कितना बड़ा अन्तर्विरोध है कि अहिंसा को आदर्श मानते हुए भी घर में ताड़न, समाज में बहिष्कार, धर्म में निष्कासन, शासन में दण्ड व्यवस्था मान्य है। इससे अहिंसा निष्ठा न पुष्ट होती है और न वह चित्त, चिन्तन, चरित्र को रचनाधर्मी रख पाती है। आदर्श और व्यवहार के पाटों के बीच भक्ति किसी तरह बची हुई है।

समाज वैज्ञानिक यथार्थ के धरातल पर अहिंसा की प्रवहमान धारा का आकलन करते हैं। रिचर्ड बी.ग्रेग के अनुसार ईसा पूर्व तीन हजार वर्ष के आसपास अहिंसा ऋषियों की वाणी से अवतरित हुई। महावीर बुद्ध ने ईसा पर्व 500 वर्ष के आसपास इसे संपोषित/संवर्धित किया और धर्मसंघ का अधिष्ठान दिया। उनके समकालीन महर्षि गोशाल, पूरण कश्यप, अजितकेश कंबल, संजय वेलट्ठी पुत्र, कुमुद कात्यायन जैसे अर्हत्, कुछ आगे-पीछे कपिल, पतंजलि, गौतम कणाद, जेमिनि, बादरायण जैसे दार्शनिक एवं चार्वाक जैसे मानवता प्रेमी मनीषी भी हिंसा के कारण और निवारण के उपाय बताने हेतु सक्रिय रहे। उसी दौर में चीन में लाओत्से, ईरान में जरथुस्त्र, यूनान में हेरीविल्टस - सुकरात ने इसके प्रयोग किये। ईस्वी सन् 30 के आसपास ईसा ने प्रयोगों को गति दी। यहूदी समाज ने अमेरिका, पिलग्रिम फादर्स ने इसे रूस पहुंचाया। यूरोप के लोग जब सुदूर देशों में पहुंचे, तब अंहिंसा सामाजिक बनने की स्थिति में आयी। ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अहिंसक प्रतिकार की युक्ति शांतिवादी क्वेकरों ने ढूंढ़ी। उसी प्रवाह में गांधीजी और टालस्टाय के बीच अहिंसक प्रतिकार के संबंध में पत्र व्यवहार हुआ। इस तरह अहिंसा विश्वव्यापिनी हुई। फिर अहिंसा के बलपर नीग्रो लोगों ने अमेरिका में मोण्टगोमरी की कहानी रची और दक्षिण अफ्रीका में नेल्सन मंडेला ने इतिहास में नया पृष्ठ जोड़ा। तिब्बत की मुक्ति के लिए आज भी दलाई लामा अहिंसा संघर्ष चालू रखे हुए हैं, पीड़ित, दमित होते हुए भी उनके अनुयायी प्रतिहिंसा के फेर में पड़ने से बचे हुए हैं, जिससे सैन्य शक्ति संपन्न चीनी सत्तातंत्र को चुनौती मिल रही है।

अहिंसा के समक्ष 18वीं सदी में औद्योगिक सभ्यता ने प्रश्नचिन्ह खड़े किये, जब कृषि तथा कुटीर उद्योगों की पुरानी उत्पादन-व्यवस्था की जगह बड़ी-बड़ी मशीनों और कल-कारखाने खड़े हुए। नये-नये उद्योग केन्द्र, नगर, स्टेशन, बंदरगाह बने। उपभोग्य सामग्री की बहुलता हो गयी। उसकी प्राप्ति के लिये बाजार, स्पर्धा, सत्ता, प्रतिष्ठान सबल हुए। द्रुतगति से उजड़े गांवों की स्थिति पर गोल्ड स्मिथ ने 'डेजर्टेड

विलेज' कविता लिखी, जिसका अनुवाद भारत में 'उजड़ा ग्राम' शीर्षक से श्रीधर पाठक ने किया। ग्रीक एम्पायर तथा रोमन एम्पायर के समय से चली आयी दासप्रथा समाप्त हुई, किन्तु इंग्लैंड, पुर्तगाल, स्पेन की सरकारों ने नीग्रो आदिवासियों को पकड़कर दास व्यापार आरंभ किया। काले नीग्रो अमेरिका में बसे। उन्हें ब्लैक अमेरिकन कहा गया। भारत से विदेश जाने वाले गिरमिटिया कहलाये। गिरमिटिये मालिक की मिल्कियत माने जाते थे। नेटाल में उन पर हुए जुल्मों के खिलाफ कानूनी लड़ाई गांधीजी ने छेड़ी, तब दो दशकों के दौरान लोगों ने गोलियां खाईं। दस हजार से अधिक हिन्दुस्तानी जेल गये। आखिर सरकार झुकी। गिरमिटियों ने दक्षिण अफ्रीका की समृद्धि बढ़ायी। वैसे ही बड़ी मशीनों और कारखानों में काम करने वाले श्रमिक उत्पादन में वृद्धि करते रहे। उत्पादन के लिए आवश्यकता भर कच्चा माल पाने और उत्पादित पक्का माल खपाने की दृष्टि से यूरोप के उपनिवेशवादियों ने दुनिया के प्रायः देशों पर आधिपत्य स्थापित किया। बलपूर्वक उनका कच्चा माल खरीदने और मशीनों से बना पक्का माल बेचने से दोहरा लाभ लेकर यूरोप धनी बना। 1856 में चार्ल्स डार्विन ने प्राणियों का उद्भव (Origan of Species) प्रकृति के नियमन 'सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' पुस्तक लिखकर यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा साम्राज्यवाद की स्थापना को न्याय के अनुरूप बताया। लेकिन शोषित वर्ग ने 1871 में पेरिस कम्यून क्रांति, 1905 में असफल रूसी क्रांति और 1917 में सफल सोवियत क्रांति की, जिसका असर लेटिन अमेरिका, अफ्रीका, एशिया, यूरोप पर पड़ा। वर्ग संघर्ष के चलते दो-दो विश्व युद्ध हुए। तब गांधीजी ने वर्ग संघर्ष की जगह वर्ग निराकरण का विचार पेश कर बुराई को खत्म करने के नाम पर बुरे आदमी को खत्म करने की रीति-नीति बदली। यथास्थिति बदलने में सत्ता-संपत्ति का विकेन्द्रीकरण तथा साध्य के साथ साधन शुद्धि का आग्रह सहायक बना। मानवीय समस्या सुलझाने के लिये अमानवीय आचरण करना अरुचिकर लगने लगा।

सन् 1988 में संयुक्त राष्ट्रसंघ ने सारे देशों की सरकारों से विषमता एवं शोषण नियंत्रित करने तथा सामान्य से सामान्य व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करने का उपाय ढूंढ़ने को कहा। मूल समस्याएँ हैं : रंगभेद, वर्णभेद, जातिभेद हटाना, आर्थिक विषमता घटाना, अन्यों की तुलना में अपनी महानता का दंभ खत्म करना और सामुदायिक जीवन को आतंक का शिकार न होने देना। इसलिए देशभक्ति, बहादुरी, मानवाधिकार संरक्षण आदि से संबद्ध उन कार्यों से विरति अपेक्षित है, जो साहसपूर्ण होते हुए भी संकीर्ण वृत्ति से किये जाते हैं या जिनका फल हिंसात्मक होता है। गांधीजी ने सीधी बात कही कि काल्पनिक न्याय की प्राप्ति के उपाय के रूप में राष्ट्रों ने दंड विधान में विनाश

को अपराध नहीं माना। वे युद्ध को बर्दाश्त करते हैं। उन्हें युद्ध से समस्या हल होती दिखायी देती है, जो अस्थायी होती है। लेकिन जो बुराई होती है, वह स्थायी होती है। अतः वातावरण को अहिंसामय बनाये बिना जीवन, जीविका, जैव विविधता संरक्षित नहीं रह सकती। जागतिक जीवन शैली परिमार्जनार्थ सिद्धान्तहीन राजनीति, श्रमहीन धन, नैतिकताहीन व्यापार, चरित्रहीन शिक्षण, विवेकहीन आनन्द, मानवताहीन विज्ञान और त्यागहीन पूजा को महापाप माना गया, लेकिन जनता की दुर्बलता, विद्वानों की आत्म-विमुग्धता, महाजनों की अर्थलोलुपता, संतों की वाग् विलासिता, शासकों की सत्ता पिपासा, दुर्जनों की मुखरता एवं सज्जनों के मौन से पाप-प्रक्षालन की गति कुंठित रही। न व्यक्ति बदला, न व्यवस्था। शान्ति के अनुरूप साधन की पवित्रता के प्रति प्रतिबद्ध रहे बिना क्षमा, मैत्री, मुदिता, पारस्परिकता, सामुदायिकता टिकती नहीं। आकांक्षा शान्ति की एवं आयोजन अशान्ति का करते रहने से सामुदायिक जीवन अन्तर्विरोधों के चक्रव्यूह में घिर जाता है। सद्गुण व्यष्टि की दौलत होकर भी समष्टि की दीनता नहीं मिटा पाते। रामायण जैसे नीति काव्य, महाभारत जैसे समाजशास्त्र, गीता जैसे धर्मज्ञान कोष के रहते भारतीय आचार-विचार में समन्वय न स्थापित करने के कारण भटक गये, क्योंकि क्रिया बिना का ज्ञान और अज्ञानी की क्रिया निष्फल रहती है : "हतम् ज्ञानम् क्रियाहीनम् हता चाज्ञानिनो क्रिया।" व्यवहार शुद्धि आन्दोलन व्यक्ति के साथ व्यवस्था परिवर्तन क्षम नहीं बने। यथास्थिति शोषणकारी व्यवस्था व दमनकारी शासन को वैध बनाये रखती है।

स्वतंत्र भारत में भूदानमूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति के जनक विनोबाजी ने सद्गुणों को सामाजिक मूल्याधारित बनाने की नसीहत दी। उन्होंने समाज से अलग-थलग रहने वाले वैरागियों से कहा कि वे समाज में जिस स्तर पर लोग रहते हैं, वैसे रहकर बतायें कि किस तरह त्याग किया जा सकता है और कैसे साधुचरित प्रभावी स्थान पा सकता है। जो गुण सामाजिक नहीं बनता, वह दोष बन जाता है। भारत में ऐसा होता रहा है। उससे मुक्ति पाना है तो ब्रम्ह मुहूर्त में उठने वाले साधु-संत लोगों को सुबह जल्दी उठना सिखायें। प्रातःकाल अध्ययन-अध्यापन में लगे रहने की प्रेरणा दें। कोई नियत कार्य करने में अप्रामाणिक या भ्रष्ट आचरण न करे। ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग की संगति सधे। असंतोषी के पास चाहे जितना भी धन हो, वह अपनी इच्छाओं का दास हो जाता है। अतः समझ बूझकर इच्छाओं पर नियंत्रण करना आये - संयम : खलुजीवनम्। शरीरस्थ विकार-शुद्धि के लिए त्याग करना तप है। सब कुछ करते हुए भी कुछ न करने जैसी प्रतीति होना योग है। कुछ भी न करते हुए समष्टि के समाधानार्थ सब कुछ करना सन्यास है। हिंसा के स्थान पर प्रेम, कानून के

स्थान पर करुणा, कर्ज के स्थान पर दान, कर के स्थान पर सर्वोदय पात्र, सशस्त्र सेना के स्थान पर शान्ति सेना का विकल्प प्रस्तुत होने से सद्गुणों की मूल्यपरकता को नये आयाम मिले। हिंसा में डूबे हुए देश हिंसा मुक्ति एवं शस्त्रास्त्र बढ़ाने वाले देश शस्त्र-मुक्ति चाहने लगे हैं।

विश्व में चार प्रेरणाएँ काम करती हैं : स्वार्थ प्रेरणा, समाज प्रेरणा, विज्ञान प्रेरणा और भगवत् प्रेरणा। इन चारों में संतुलन अपेक्षित है। स्मरण रखें कि हिंसा में रस लेने वाली मानसिकता चेतन को वीर बनाती है, किन्तु उसकी रस मुक्ति चेतना को महावीर बनाती है। अनन्त ज्ञान-दर्शन-चरित्र-वीर्य सम्पन्न तीर्थंकर महावीर ने पते की बात कही कि इस धरती पर जितने भी बुद्ध हुए थे, हैं, या होंगे, उन सबका अधिष्ठान शान्ति है, वैसे ही जैसे प्राणियों का अधिष्ठान धरती है।

जे य बुद्धा अइकंता, जे य बुद्धा अणागया।
संति तेसिं पइट्ठाणं भूयाणं जगइ जहा।।

(अर्हद् वंदना)

शान्ति परायण मनीषी अशान्ति का निवारण करते हैं, प्राकृतिक संतुलन बनाये रखते हैं, उनकी सन्निधि में आये सांप नेवले जैसे स्वाभाविक वैर रखने वाले जीव भी वैर त्याग बैठते हैं, शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं। उन्हें तीर्थंकर कहें, अर्हत् कहें, अवतार कहें या अन्य किसी भी नाम से पुकारें - उनका साधु चरित अनुकरणीय लगता है। महात्मा गांधी के अहिंसक अभियान और शान्ति प्रयास उसी के प्रतिफल हैं, जिनका आकलन कर रोम्या रोला जैसा मनीषी लिख बैठा कि : "जिन संतों ने हिंसा के मध्य अहिंसा की खोज की, वे न्यूटन से अधिक बुद्धिमान और वेलिंगटन से महान योद्धा थे।" हम गांधी के साथ जिये हैं, हमने गांधी कार्य अपनाया है, हमारे चिन्तन, चित्त, चरित्र में उदारता या व्यापकता न आये तो इतिहास हमें क्षमा नहीं करेगा। हमारा यह धर्म बनता है कि सामुदायिक जीवन को अहिंसानिष्ठ बनायें, क्योंकि आधुनिक शस्त्रास्त्रों के भंडार व अपार सैन्य शक्ति रखने वाले विकसित देश ही नहीं विकासशील एवं अविकसित देश भी अपनी घरेलू तथा आतंकवादी हिंसा से त्रस्त होकर विश्व शान्ति की संस्कृति अपनाने को विवश हैं।

एक बनें हम, नेक बनें हम, विश्व शांति हित कार्य करें।
पर्यावरण संतुलन साधें, जन गण के दुख दर्द हरें।।

•

धरती बचाने वाला जीवन-दर्शन

पिछले दशक में संसार को महाविनाश से बचाने के लिए 53 नोबेल पुरस्कार विजेता मनीषियों ने एक संयुक्त घोषणापत्र प्रकाशित कर कहा कि आपने हमें इसलिए सम्मान दिया है, क्योंकि हमारा कार्य आपसी विचार-विमर्श, भ्रातृभाव तथा सार्वभौम शान्ति एवं प्रगति का साक्षी बना रहे। हम दुनिया के सभी सद्भावना सम्पन्न लोगों से अपील करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी हैसियत में दुनिया के ऐसे लोगों की जीवन रक्षा के लिए कदम उठाये, जो भूख एवं अर्ध-विकास से पीड़ित हैं। आज की दुनिया में प्रचलित राजनीतिक व आर्थिक दुष्चक्र के शिकार हैं। यह अनिवार्य है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति किसी जीवित प्राणी को बचाने और प्रमाद, अकुशलता या उपेक्षा द्वारा भी उसे न मारने व उसके कष्ट-निराकरण की आवश्यकता को सर्वमान्य कानून की सत्ता प्रदान करे। यदि कमजोर लोग अपने को संगठित कर उन थोड़े, किन्तु उपलब्ध शक्तिशाली साधनों का इस्तेमाल करते हैं, जैसा गांधीजी द्वारा निर्दिष्ट अहिंसात्मक कार्यक्रम तथा समिति व उपयुक्त उद्देश्यों की स्वीकृति व प्राप्ति के लिए किया गया तो हमारा निश्चित मत है कि हम अपने समय की महाविपत्ति को समाप्त कर सकते हैं।

वैज्ञानिकों को गांधी के अहिंसक कार्यक्रम की याद इसलिए आयी कि गांधी ने उस जीवन पद्धति, जीविका पद्धति और जगत रक्षा पद्धति का विकल्प दिया, जिसका आधार हिंसा है। विज्ञान युग में वस्तुतः हिंसा अब अपने आपमें कोई ताकत नहीं रह गई है। वह तो दमित, शोषित, शासित व उपेक्षित लोगों की अनदेखी का परिणाम है। इसलिए विश्व में दो आदर्श हैं – (1) गांधी, (2) गांधी इतर। एक नये युग को आकार देता है, दूसरा प्राचीन युग का पिष्टपेषण करता है। एक शान्ति चाहता है, दूसरा अशान्ति। एक का शिक्षा में विश्वास है, दूसरे का शस्त्र में। एक सहयोग का हिमायती है, दूसरा स्पर्धा का। एक को सादगी चाहिए, दूसरे को शान। एक सेवाकांक्षी है, दूसरा सत्ताकांक्षी। एक की सृजन के प्रति प्रतिबद्धता है, दूसरे की संहार में। एक के लिये सदाचार प्रमाण है, दूसरे के लिए शास्त्र प्रमाण। एक संतत्व परायण है, दूसरा सैनिक परस्त। इसीलिए गांधी की गणना न्यूटन से अधिक बुद्धिमान एवं वेलिंगटन से बड़े योद्धा के रूप में हुई है। भारतीयेतर देशों में वीर की पूजा होती है, भारत में वीर का

सम्मान तो है, पर पूजा महावीर की होती है, जिसके समक्ष तख्त, तलवार, तिजोरी वाले नतमस्तक रहते हैं। आज आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित तथा अपार सैन्य शक्ति के धनी विकसित राष्ट्र भी घरेलू हिंसा और आतंक से मुक्ति पाने के लिए गांधी को जानने-समझने का प्रयत्न कर रहे हैं। यूरोप, अमेरिका, अफ्रीका, एशिया के देशों में गांधी अध्ययन केन्द्र खुल गये हैं, क्योंकि सभी समझ रहे हैं कि हम गोरे हों या काले, हम इस धर्म के अनुयायी हों या उस धर्म के, हम बड़े देश के निवासी हों या छोटे देश के - हर समय लड़ते-झगड़ते नहीं रह सकते। विज्ञान के आविष्कारों ने हमारे सामने जब सह-जीवन या सह-मरण की परिस्थिति पैदा कर दी है तो क्यों न हम सह-जीवन को ही सम्पन्न बनाने का प्रयास करें। हर एक आदमी के लिए ईमान की रोटी व इज्जत की जिन्दगी जीने की अनुकूलता और सामुदायिक श्रीवृद्धि करना ही मानव सापेक्ष गांधी जीवन-दर्शन है।

मोहनदास करमचंद गांधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 को हुआ और 30 जनवरी 1948 तक वे हमारे बीच रहे। उस अल्प समयावधि में उन्होंने हमें सिखाया कि हम हर आँख का आँसू पोंछे। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने स्वीकार किया था कि यह काम हमारी ताकत से भले ही बाहर हो, लेकिन जब तक आँसू हैं, दुःख है, आम आदमी की अस्मिता खतरे में है, तब तक हमें गांधी निर्दिष्ट रचनात्मक कार्य करने ही होंगे, जिससे भारत एशिया की या दुनिया के किसी भी हिस्से की कुचली या चूसी हुई जातियों की आशा बनी रहे।

आशा का बीजांकुर करते हुए गांधी ने यह जरूरी नहीं माना कि विरोधी या आततायियों को रोकने के लिए आदमी पशु बन जाय, और फिर बन सके तो इंसान बने। इन्सानियत के निमित्त जीवन अर्पित करके ही समाज, देश व दुनिया उन बुराइयों से मुक्ति पा सकती है, जिनसे हम सब पीड़ित हैं। पीड़ा मुक्ति हेतु तीन कार्य करें :

1. द्वेष धर्म की जगह प्रेम धर्म अपनायें।
2. हिंसा की जगह आत्म बलिदान करना सीखें।
3. पशु बल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को प्रभावी बनायें।

असहयोग, सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह के जरिये जब स्वतंत्रता आन्दोलन की पहचान विश्व भर में बनी, तब जोर देकर कहा गया कि काल्पनिक न्याय प्राप्ति के उपाय रूप में राष्ट्रों के दण्ड विधान में विनाश को अपराध नहीं माना जाता तथा युद्ध को बर्दाश्त किया जाता है। युद्ध से समस्या हल होती दिखायी देती है, लेकिन बुराई होती है, व स्थाई होती है। जर्मनी ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया और प्रतिदिन असंख्य निर्दोष स्त्रियों, बच्चों आदि का संहार होने लगा, तो 9 सितम्बर 1939 को पोलैण्ड

गणराज्य के पूर्व अध्यक्ष पादरेस्की को गांधीजी ने लिखा कि पोलैंडवासी अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए आज जो असमान लड़ाई लड़ रहे हैं, उसमें निःसन्देह पूरे हृदय से मैं आपके साथ हूँ। आज यूरोप में जो पागलपन भरी विनाशलीला मची हुई है, काश कि मेरे पास उसे रोकने की ताकत होती। मैं उस देश का वासी हूँ, जो अपनी स्वाधीनता खो चुका है और आज संसार की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी शक्ति के चंगुल से अपने को आजाद कराने के लिए संघर्ष कर रहा है।

प्रकारान्तर से हर हिटलर को समझाने हेतु 23 जुलाई 1939 को गांधीजी ने लिखा : "आज संसार में आप ही ऐसे व्यक्ति हैं, जो युद्ध को रोक सकते हैं, जो मानव जाति को बर्बर अवस्था में पहुंचा सकता है। क्या आपको किसी उद्देश्य के लिए इतना बड़ा मूल्य चुकाना चाहिए, फिर चाहे वह उद्देश्य आपकी दृष्टि में कितना ही महान क्यों न हों? आशा है आप एक ऐसे व्यक्ति की अपील पर ध्यान देंगे, जिसने सोच-समझकर युद्ध के तरीके का त्याग कर दिया है और इसमें उसे काफी सफलता भी मिली है।"

1939 से 1945 तक चले विश्वयुद्ध के दौरान गांधी-मन बहुत परेशान रहा। उन्होंने लिखा कि यह युद्ध पश्चिम में विकसित प्रजातंत्र और हिटलर जिसके प्रतीक हैं, उस सर्व सत्तांवाद के बीच होने वाले युद्ध का रूप धारण कर रहा है। इस संसार के रंग मंच पर जो सच्चा दुःखद नाटक खेला जा रहा है, उसमें हम अभिनेता और दर्शक दोनों हैं। मेरा तो मार्ग निश्चित है। वह एक या दोनों को अहिंसा के मार्ग पर ले जाने का होगा, फिर चाहे उस मार्ग पर उनकी प्रगति अगोचर ही क्यों न हो। अहिंसा तो धीमी गति से बढ़ने वाला पौधा है, वह अदृश्य किन्तु निश्चित रूप से बढ़ता है। जिस तरह मैं नहीं चाहता कि यूरोपीय राष्ट्र अपनी आजादी का महल भारत की आजादी के भग्नावशेषों पर खड़ा करें, उसी तरह मेरे मन में कोई इच्छा नहीं है कि भारत की आजादी का निर्माण इन युद्धरत राष्ट्रों में से किसी की राख पर किया जाय। जापान में प्रयुक्त अणुबम के कारण दो करोड़ से अधिक लोगों के मारे जाने, लगभग 3 करोड़ के अपंग व घायल होने तथा 2 करोड़ के विस्थापित होने की करुण कहानी से भी यह साबित हो गया है कि हिंसा से हिंसा मिटाने की आशा रखना बेमानी है। बाद में इण्टरनेशनल रिव्यू ऑफ डिप्लोमेटिक पोलिटिकल साइंस के अध्ययन से यह निष्कर्ष सामने आया कि जितनी रकम संहार में लगी, उतनी सृजन में लग जाती तो 2 लाख से अधिक आबादी वाले हर नगर के पुस्तकालय, शिक्षालय, चिकित्सालय को 25-25 करोड़ डालर मिल जाता। इसके अलावा विकसित राष्ट्रों का हर नागरिक भी 12 हजार डालर का मकान, चार हजार डालर का सामान तथा 20 हजार डालर की

सहायता पा जाता।

शिकारी युग से सामन्तवादी युग, सामन्तवादी युग से साम्राज्यवादी युग तक आततायी का उत्तर आततायीपन से, विकृति का उत्तर विकृत मन से देने वाली परस्पर अविश्वास और लादी हुई हुकूमत चली, उसकी जगह गांधी ने परस्पर विश्वास करने वाला दर्शन आरम्भ कर देश भक्ति, बहादुरी, धार्मिकता, विश्व संस्कृति आदि को नया परिवेश दिया। उसमें वे सारे कार्य वर्जनीय हो गये, जो साहसपूर्ण होते हुए भी संकीर्ण वृत्ति से किये जाते हैं और जिनका फल हिंसात्मक होता है। जिन अंग्रेजों के राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था, वे 15 अगस्त 1947 को भारत का शासन भारतीयों को सौंप गये, तब गांधी का गौरव गान गाया गया :

'दे दी हमें आजादी बिना खडग बिना ढाल।
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।।'

सिद्धान्तहीन राजनीति, श्रमहीन धन, नैतिकताहीन व्यापार, चरित्रहीन शिक्षण, विवेकहीन आनन्द, मानवताहीन विज्ञान और त्यागहीन पूजा का परित्याग कर व्यक्तिगत चिन्तन की जगह सामुदायिक चिन्तन को प्रश्रय देकर सामूहिक सफाई, सामूहिक कताई, सामूहिक श्रमदान, सामूहिक प्रार्थना और सर्वहित साधना (सर्वोदय) को आचार संहिता बनाते तो वीरों की सन्तान और महर्षियों के उत्तराधिकारियों के लिए गांधी दीप स्तम्भ बन जाते। गांधी के जाने के बाद विनोबा की भूदानमूलक, ग्रामोद्योग प्रधान, अहिंसक क्रांति तथा जे0पी0 की सम्पूर्ण क्रान्ति से लाभान्वित होने के बाद भी जो गांधी विचार का महत्व नहीं समझना चाहते, उनसे मात्र यही कहा जा सकता है कि 'मूंदहु आँख कतहु कछु नाहीं।' लेकिन जो देख सकते हैं, सुन सकते हैं, समझ सकते हैं 'वे राष्ट्रीय उपासना के तौर पर प्रतिदिन कताई या उत्पादक श्रम करें तो प्रत्यक्ष हो जायेगा कि खादी से जैसे अबलाओं को रोजी-रोटी मिली, किसान, मजदूर, कारीगरों को पूरक उद्योग मिले, जिसके बलपर निहत्थी जनता शोषण शासन का दुष्टचक्रव्यूह भेदने में सफल हुई, उसी प्रकार अब एशिया, अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका के ऋणग्रस्त देशों को अपना-अपना राष्ट्रोद्योग खड़ा करने की प्रेरणा गांधी से मिल सकती है। स्वतंत्रता व स्वावलम्बन अन्योन्याश्रित हैं, जिसे रचनात्मक अधिष्ठान देने से ही जनता की दशा व दिशा बदलती है।

वर्ग-विद्वेष, वर्ण-विद्वेष, कत्ल या कानून के जरिये जनसाधारण जितना नहीं पा सका, उतना करुणा से प्रेरित भूदान-ग्रामदान आन्दोलन से पाया, उससे सबक लें : हवा और पानी सी धरती जन-जन में बँट जाये और विश्व खाद्यान्न भण्डार से प्रति व्यक्ति 3000 कैलोरी ऊर्जा तथा 65 ग्राम प्रोटीन पाये। गांधी का निश्चित मत है कि प्रकृति

संसार में इतना पैदा करती है कि हर मनुष्य को आवश्यक वस्तु और जीवन निर्वाह की जरूरी सामग्री सुखपूर्वक मिल सकती है। यदि मनुष्य आवश्यकता से अधिक उपयोग करता है या संग्रह करता है तो दूसरे को उससे वंचित रहना पड़ता है। केन्द्रित सत्ता, भारी उद्योग, प्राकृतिक संपदा और कानूनी हक जमाने वाली नीतियाँ वंचित करने वालों की मददगार है। विश्वबैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ आदि उन्हीं की आड़ में हर स्तर पर प्रतिस्पर्धा बढ़ाती हैं। उसके दुष्परिणामों की ओर इंगित करते हुए पिछले दशक में विश्व के शीर्षस्थ वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी थी कि यदि स्पर्धा नहीं रुकी तो आने वाले समय में जो साधन प्राप्त हैं, वे भी घटकर आधे रह जायेंगे।

उपभोक्तावादी मानसिकता, पूँजीवादी आकांक्षा, समाजवादी नारे, साम्यवादी संघर्ष, इस प्रतिस्पर्धा को हवा दे रहे हैं, जबकि गांधी मार्ग इसे रोकने के लिए प्रयत्नशील है और चाहता है कि जीवन का लक्ष्य सत्य, जीवन की पद्धति संयम, जीवन का कार्य सेवा, सेवा का आधार सहयोग, सहयोग की कसौटी शान्ति मानी जाय। इसके बिना हर जीवन को समाधान मिल ही नहीं सकता। 'द फ्यूचर ऑफ द वर्ल्ड' के लेखक पेरिस आर्म स्ट्रांग ने भी ताईद की है कि यदि आप विकास की अंधी दौड़ में शामिल होकर अमेरिका का 1950 का स्टैण्डर्ड पाना चाहेंगे तो भी आपको आज की अपेक्षा सात गुना पेट्रोल, आठ गुनी गैस, नौ गुना कोयला, 75 गुना लोहा, 100 गुना तांबा और 200 गुना टीन चाहिए, जो इस धरती के गर्भ में नहीं है। लेकिन विकास के दीवाने जल, जंगल, जमीन, जीव-जन्तु और जागतिक संसाधनों का इतना दोहन कर चुके हैं कि विश्वभर में धरती बचाओ की गुहार लग रही है। प्रकृति, पर्यावरण और पुरुषार्थ की संतुलित दृष्टि के अनुरूप सृष्टि करने वाली गांधी ज्ञानशालाएं बढ़ाने से ही धरती बचाने की शिक्षा-दीक्षा संभव है।

अहिंसा को धर्म मानने वाले लोग आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्र में समझौता कर लेते हैं। अहिंसा में उनकी श्रद्धा है, पर निष्ठा हिंसा में होने से उनकी निष्ठा असरकारी नहीं होती। आखेट युग से अणु युग तक मिली हिंसा की चुनौती स्वीकार करने का साहस इतिहास में पहली बार गांधी ने किया और स्पष्ट हो गया कि भारतीयों का ही नहीं, भारतीयेतर समस्त गरीबों, दलितों, पीड़ितों एवं शोषितों का उद्धार गांधी के मार्ग पर चलने से ही होने वाला है। सीधे नहीं तो टेढ़ी राह से गांधी तक पहुंचना ही होगा। विश्वबैंक के एक अधिकारी डॉ0 हमबुल उलहक ने श्रीलंका, भूटान, नेपाल, मालद्वीव, अफगानिस्तान, म्यामार, भारत, पाकिस्तान एवं बांग्लादेश की सरकारों को लगातार पन्द्रह वर्षों तक अपने रक्षा बजट में प्रतिवर्ष 5 प्रतिशत की कटौती करने की सलाह दी है। साउथ एशिया की वर्ष 1997-98 की रिपोर्ट में बताया गया है कि

यह कटौती करने से ही इन देशों के 77 करोड़ लोगों को पेयजल, 69 करोड़ को स्वास्थ्य केन्द्र, 12 करोड़ 60 लाख बालक-बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा और 8 करोड़ 80 लाख बच्चों को पोषक आहार मिलेगा।

स्थानीय योजना बनाने, उत्पादन में भागीदारी बनाने, मिलकर काम करने, एकदिल होकर रहने वाली प्रवृत्तियों का संयोजन करते हुए गांधीजन आज जय ग्राम से जय जगत की अलख जगा रहे हैं। गा रहे हैं --

मानवता का हित कर पाये ऐसा गांधी ज्ञान चाहिए,
हल कर दे जो सभी समस्या ऐसा अनुसंधान चाहिए।
पर्यावरण शुद्ध कर पाये इसका सबको ध्यान चाहिए,
शिक्षा सेवा स्नेह कला से विकसित हिन्दुस्तान चाहिए।



भारतीय संस्कृति के समक्ष उपस्थित चुनौती

काशी में ४-५-६ जनवरी, १९४९ को 'नव संस्कृति संघ' का सम्मेलन हुआ था। उसमें भारतीय संस्कृति तथा परिवर्तन की चुनौती के सन्दर्भ में जो विचार-विमर्श हुआ, उसका सार एक घोषणापत्र[1] के रूप में विचारार्थ प्रसारित किया गया था। आज ठीक ५१ वर्ष बाद हम उसी बिन्दु पर खड़े कह रहे हैं कि 'पुरानी परम्पराएँ और पुरानी सामाजिक रीति-नीति अब हमारा मार्गदर्शन नहीं कर सकती। नई परिस्थिति में हमें उनका सुधार और नियमन करना पड़ेगा।"[2]

संस्कृति का स्रोत

मैं जीना चाहता हूँ। आप जीना चाहते हैं। आसपास का जीवजगत् जीना चाहता है। हम सबकी जिजीविषा में तालमेल बिठानेवाली दृष्टि ही दर्शन है। उस दर्शन के अनुरूप सृष्टि करनेवाली आचारसंहिता धर्म है। धर्म का नीतिपरक व्यवहार सभ्यता और अन्तःस्पर्शी सदाशयता संस्कृति है। जीवन की जरूरतों को पूरा करते समय किसी समय हमारे पूर्वजों ने आँधी, वर्षा, भूचाल जैसे प्राकृतिक संकटों में अपना मनोबल बनाये रखने के लिए अदृश्य शक्ति की अवधारणा की तथा सही-गलत कार्यों का फल समझाने के लिए स्वर्ग-नरक का स्वरूप तय किया। इसका परिणाम यह हुआ कि समाज पूज्य और पूजक, आराध्य और आराधक, मालिक और दास, शोषक और शोषित जैसे वर्गों में बँट गया। बाँटनेवालों ने हर वर्ग के लिए कुछ कर्म नियत किये। उसके अनुसार पढ़ानेवाले ब्राह्मण, रक्षा करने वाले क्षत्रिय, कृषि-गोपालन और व्यवसाय करनेवाले वैश्य तथा सेवा करनेवाले शूद्र कहे जाने लगे। सबकी भोजन, वस्त्र, आवास सम्बन्धी आवश्यकताएँ समान होते हुए भी उन आवश्यकता की पूर्ति में सहभागी होने से समूह के समूह छूट गये। इससे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्रों में चुनौतियाँ खड़ी हो गयीं। उनका समाधान खोजने में जैन, बौद्ध चार्वाक् आदि चिन्तक लगे रहे।

भाग्यवाद बनाम पुरुषार्थ

ऐतिहासिक चुनौतियों का सामना करनेवाले मनीषियों ने मनोयोगपूर्वक पुरुषार्थ किया। परमार्थ को केन्द्र में रखकर वे भारत में स्वर्णयुग लाये। किन्तु स्वर्गाकांक्षी लोग परिश्रम की जगह प्रारब्ध को और इहलोक की जगह परलोक को महत्त्व देने लगे। उनमें पुरोहितों का प्राधान्य था। वे यज्ञ-यागादि अनुष्ठान कराते हुए राजाओं को नियन्त्रित करते थे। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में, "राज्य-रक्षा, भोग-विलास, परिवार की पुष्टि और

सबसे बढ़कर पुरोहितों की तुष्टि के लिए राजा लोग सूर्य की भाँति अपनी प्रजा का धन सोखने लगे। तब उनके विरुद्ध विद्रोह हुआ।"[३] बाद में स्थितियाँ बदलीं। "जिस पुरोहित-शक्ति ने मिहिर कुल (राजपूतों के पूर्वपुरुष) आदि के भारत विजय करने पर कुछ दिन तक अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए पुनः प्रयत्न किया था, उसके लिए मध्य एशिया से आयी हुई निष्ठुर-बर्बर सेनाओं के अधीन होकर उनकी घृणित रीति-नीतियों को अपने देश में प्रचलित किया था तथा साथ ही साथ जिस पुरोहित शक्ति ने उन निरक्षर बर्बरों को प्रसन्न रखने के लिए ठगने के सरल उपाय मन्त्र-तन्त्रादि की शरण ली थी, वही पुरोहित-शक्ति पश्चिम से आई हुई मुसलमान आक्रमण रूपी आँधी के स्पर्शमात्र से चूर-चूर होकर भूमि पर गिर गई।"[४] उसके पश्चात् हिन्दू-मुसलमान आदि सब मिलकर भी भारत को गुलाम होने से नहीं बचा पाये।

महात्मा गाँधी की सांस्कृतिक क्रान्ति

गुलामी से मुक्ति दिलाने के लिए महात्मा गाँधी ने सांस्कृतिक क्रान्ति के रूप में स्वतन्त्रता-संग्राम छेड़ा। अहिंसा, सत्य आदि एकादशव्रत मानवसेवा और राष्ट्रसेवा की अनिवार्य शर्त बन गये। 'अन्तःशुद्धि, बहिःशुद्धि, श्रमः, शान्तिः, समर्पणम्' की जीवनचर्या से माहौल बदला, आजादी मिली। आज़ाद देश में साम्प्रदायिक उपद्रव, भाषाई उन्माद, सुखोपभोग की लालसा तथा सत्ता की होड़ ने जो चुनौतियाँ उपस्थित कीं, उनका अध्ययन कर आचार्य नरेन्द्रदेव जैसे मनीषी ने सुझाया कि सांस्कृतिक स्तर पर हम इन समस्याओं का मुकाबला करें। हमारी संस्कृति का सबसे बड़ा तत्त्व विभिन्न जीवन जीवनप्रणालियों में एकता एवं जीवन के हर क्षेत्र में समन्वय स्थापित करना है।... अपना खयाल रखते हुए दूसरों का भी खयाल रखना संस्कृति का मूल है।... इस संस्कृति में वे सभी तत्त्व मौजूद हैं, जिनसे हम नवयुग और नवमानव का निर्माण कर सकते हैं। दृढ़संकल्प और विशाल हृदय से ही भारत में नये मानव का जन्म होगा। नये मानवों के लिए ही नया भारत बना है।[५]

भारतीय जीवन-मूल्यों के सुधार और नियमन की दिशा में सन्त विनोबा ने पहल की और कहा कि "हमारे साधु पुरुषों ने समाज का खा कर भी समाज की सेवा नहीं की। यदि वे लोगों को सिखाते कि सुबह उठना है, प्रातःकाल का समय अध्ययन में लगाना है, रात को सिनेमा नहीं देखना है, ऐसी प्रगाढ़ निंद्रा लेना है जिससे स्वप्न न आये, तो समाज का स्तर ऊँचा उठता और सामाजिक मूल्य भी बनता।" पुरोहितों, सन्तों और धर्मगुरुओं ने ऐसा नहीं किया। वे कहने को तो प्रेम का सन्देश देते रहे, पर उन्होंने हमेशा नफरत पैदा की। वर्णव्यवस्था, रंगभेद, लिपि, गुरु, पन्थ आदि की आड़ में बहुसंख्यक जनता को मानसिक दृष्टि से दास बनाये रखा। हमारी नई पीढ़ी को जब वह देखना असह्य हो गया,

तब हमने घोषणा की :

१. वह व्यवस्था निकम्मी है, जो जीवनघाती तौर-तरीके सुझाती है।

२. वह धर्म निकम्मा है, जो जातिवाद को प्रश्रय देता है।

३. वह सम्प्रदाय निकम्मा है, जो उपदेश के बल पर समाज बदलने की आशा रखता है।

हम उस व्यवस्था, धर्म, सम्प्रदाय और साधु को अमान्य करते हैं। अमान्य करने के कारण हैं :

१. व्यवस्था का निकम्मापन बिचौलियों ने साबित किया।

२. धर्म का निकम्मापन सम्प्रदायों ने साबित किया।

३. सम्प्रदायों का निकम्मापन मुफ्तखोर साधुओं ने साबित किया।

४. साधुओं का निकम्मापन श्रमनिष्ठ साम्ययोगियों ने साबित किया।

हमें इस व्यवस्था, धर्म, सम्प्रदाय और साधुओं की जमात को अखंड सामाजिकता कायम करने की दिशा में ले चलना है, क्योंकि हम रचनाधर्मी हैं।

१. व्यवस्था वह है, जो अविरोधी जीवन जीने की अनुकूलता दे।

२. धर्म वह है, जो अशरण की शरण और निर्बल का बल हो।

३. सम्प्रदाय वह है, जो सामुदायिक भावना को ठोस धरातल दे।

४. साधु वह है, जो समाज को समर्पित होकर "योगः कर्मसु कौशलम्" का मूर्तरूप बन जाये।"[7]

हम व्यवस्था, धर्म, सम्प्रदाय और साधुओं में नये मूल्यों की स्थापना करें।

आवश्यक हो तो हम यह भी कहें कि जिनमें कार्यक्षेत्र खड़ा करने की क्षमता हो वे ब्रह्मर्षि हैं; जो कार्य-व्यवस्था दे सकते हैं वे राजर्षि हैं; जिनसे कला-व्यवस्था टिकी रह सकती है वे देवर्षि हैं। 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' को नये सन्दर्भों में ढालने की यही प्रक्रिया है। इससे "अतीत के उत्कृष्ट और जीवनप्रद अंशों की रक्षा तथा अनुपयुक्त और हानिकारक अंशों का परित्याग" करने का वातावरण बनता है। जो परिणाम आ सकते हैं वे निम्न हैं :

१. भगवान और भक्त के बीच से पुरोहित हट जाएँ।

२. उत्पादक और उपभोक्ताओं के बीच से दलाल हट जाएँ।

३. नागरिकों और नागरिकों के बीच से राजनीतिज्ञ हट जाएँ।

मानव को एक-दूसरे के सुख-दुःख में हिस्सेदार बनाने की इससे अच्छी विधि और कोई हो नहीं सकती। यह कार्य केवल कहने से नहीं होगा। इसके लिए हमें स्वयं कुछ करना होगा। जैसे-

१. उत्पादक श्रम : माना जाता है कि भारत में लगभग छह हजार जातियाँ हैं। उनमें से ब्राह्मण ९९%, क्षत्रिय ८९%, वैश्य ९३% और मुसलमानों के उच्च वर्गों में भी ९३% अनुत्पादक हैं। इतने अनुत्पादकों के रहते कोई भी समाज या देश निश्चिंत नहीं रह सकता। उत्पादनकर्ताओं को उनके लिए अमानवीय श्रम करने को विवश होना पड़ता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की १९८६ की रिपोर्ट के अनुसार डेनमार्क का मज़दूर ५ मिनट में, अमेरिका का ८ मिनट में, ब्रिटेन का १५ मिनट में और सिंगापुर का ३७ मिनट में काम करके एक किलो रोटी प्राप्त कर सकता है। इतना प्राप्त करने के लिए भारतीय को ४८ मिनट खटना पड़ता है।

इस तरह एक ओर तो भारतीय उत्पादक श्रमिक विकास की दौड़ में स्वयं पिछड़ा है, वहीं दूसरी ओर अनुत्पादक उसके कन्धे पर जमे बैठे हैं। इसलिए उत्पादन में भाग लिये बिना संस्कृतिप्रिय कहलाने की बात अपने आप में बेमानी है।

२. परिमित भूमि परिमित मकान : भारत में कुल ७० करोड़ एकड़ भूमि है। ३० करोड़ एकड़ भूमि में खेती होती है। खेतों पर ८० करोड़ भारतीयों का अधिकार कहाँ है? २७ करोड़ ७ लाख एकड़ भूमि मात्र ७५ लाख लोगों के कब्जे में है। हर १०० में ७४ परिवारों के पास एक एकड़ से भी कम भूमि है। लगभग साढ़े सात करोड़ और शहरों में रहने वाले दस करोड़ लोग घर चाहते हैं। ढाई करोड़ लोग गन्दी बस्तियों में बसे हैं। सवा करोड़ लोगों की रातें फुटपाथों पर कटती हैं। उन सब पर ध्यान देना है तो खेती न करनेवाले लोग खेतों पर कब्जा रखने का मोह छोड़ दें। इसी तरह किराए पर मकान देना बंद करें। अकारण मकानों को खाली रखना भी अपराध मानें। यह देश एक है और इसकी एकता बनाये रखना है तो यह अनिवार्य है कि हम कहीं एक ही जगह रहें। एक ही जगह चल-अचल सम्पत्ति रखें। गाँव में हैं तो सिर्फ गाँव में और शहर में हैं तो सिर्फ शहर में। एक से अधिक जगहों पर खेत-मकान आदि लेना कानूनन जुर्म घोषित किया जाए। जितनी खेती स्वयं कर सकें, उतने ही खेत रखने का अधिकार हो। शेष भूमि खेतिहारों में बाँट दी जाए। जिन मकानों में नहीं रहते, उनमें दूसरों को बसने दिया जाए। पैसे के बल पर हक जताने वाली वृत्ति छोड़े बिना मानवकेन्द्रित अर्थनीति अस्तित्व में नहीं आ सकती। "असंविभागी न हु तस्स मोक्खो।"८ जैसे उद्घोष की सार्थकता सामाजिक सन्तुलन बनाये रखने में ही है।

३. आमदनी का अन्तर : भारत के १०० में से ५४ लोग अत्यन्त गरीब हैं। ऊपरवाले पाँच प्रतिशत की आमदनी नीचेवाले चालीस प्रतिशत की तुलना में तीस गुनी है। कहीं-कहीं गरीब अमीरों के बीच पाँच सौ गुना अन्तर है। यह अन्तर मिटाने के लिए आमदनी को मर्यादित करें। अन्य सुविधाएँ भी इतनी न लें कि दूसरों को उससे वंचित रह

जाना पड़े। आज अधिकांश सुविधाएँ शहरवालों के पास हैं। उनके सात बच्चे पढ़ लेते हैं, तब कहीं देहात का एक बच्चा स्कूल के दरवाजे पहुँचता है। जब नौ शहरी चिकित्सा-सुविधा ले लेते हैं, तब एक ग्रामवासी को दवा मिलती है। रहन-सहन में इतना अन्तर है कि कीमती पहनावों के आगे गरीब नंगा दिखाई पड़ता है। कंट्रोल, कोटा-परमिट, ब्लैक, ठेकेदारी, जमाखोरी आदि के जरिए प्राप्त धन को खुले हाथों खर्चनेवाले यदि अब भी नहीं सँभले तो उनका भविष्य सुरक्षित नहीं रहेगा। आमदनी के स्रोतों को परस्पराभिमुख करके ही हम वर्गविद्वेष को खतम कर सकते हैं।

४. उन्नति का अवसर : सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक क्षेत्रों में हमारे यहाँ भारी अन्तर्विरोध है। उठने-बैठने, बोलने-चालने, खाने-पीने व काम-धाम में बराबरी न होने से बहुसंख्यक लोग उन्नति के अवसरों से वंचित हैं। न समान हैसियत है, न समान शिक्षा। उसमें समानता लाने हेतु गाँधीजी ने बुनियादी तालीम की रूपरेखा प्रस्तुत की। उसके अनुसार हम साधारण ज्ञान के साथ-साथ काम का मेल बिठाने की तकनीक खोज लेते तो ४१ करोड़ से अधिक शिक्षा पानेवाले बच्चों को प्राथमिक कक्षाओं में ही पाँच वर्ष का लाभ हो जाता। दो अरब से अधिक श्रमदिवसों की हानि रोकने से न केवल देश के ६३ प्रतिशत निरक्षरों को साक्षर बनाने में बनाने में मदद मिलती, वरन् बालकों की रचनाधर्मिता भी सामने आती। विद्यार्थियों को रचनात्मक कार्यों में प्रवृत्त करने का माहौल न बनने से सारी शिक्षा डकैती का प्रशिक्षण बन गई है। शिक्षाविद् कहने लगे हैं कि "शिक्षा भी डकैती का ही एक ढंग है। शिक्षित होने का मतलब है- स्वाभिमान, शान्ति तथा मानवीय समता पर डकैती डालना।" नौकरियों को लूटने के लिए, मानवता की इज्जत और विश्वशान्ति लूटने के लिए, जो शिक्षा चल रही है, उससे भारतीय परिवेश बदलता है। भारतीयों की दृष्टि में शिक्षा का उपयोग यही है कि वह जीवन-कला सिखाये और परस्पर विरोधी ज्ञात होनेवाली स्थितियों से उबरने की जानकारी देदे। आम भारतीय जिसे पंडित मानता है, उसी के बारे में सन्त कबीर ने लिखा है :

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सौ पंडित होय।।

भौतिक और अध्यात्म का समन्वय

इसमें सन्देह नहीं कि "कबीले, बिरादरी, जाति, धर्म और राष्ट्र के स्तरों से गुजरकर हम अन्तर्राष्ट्रीय समाज के युग में प्रवेश कर रहे हैं। ऐसे समाज की प्रतिष्ठा के लिए जिन साधनों की आवश्यकता है, वे साधन एकत्र हो रहे हैं। सारे संसार को एकसूत्र में ग्रथित करने के भौतिक साधन विपुल हैं। विज्ञान ने उन्हें सुलभ किया है। किन्तु जब तक मानव अपनी संकीर्णता का परित्याग नहीं करता, तब तक वह इन साधनों का उपयोग नहीं कर

सकता।[१] आचार्य नरेन्द्र देव की यह चेतावनी युगबोध करानेवाली है। युगद्रष्टा आचार्यों को चाहिए कि वे संकीर्णताओं से ऊपर उठने के लिए निर्णायक कदम उठायें :

१. जब तक आम आदमी को दो जून की रोटी, दो जोड़ी कपड़ा या सिर ढ़कने को छप्पर नहीं मिल जाता, तब तक वे न छप्पन भोग उड़ाएँ, न नरम-गरम रेशमी कपड़े पहनें, और न ही गगनचुम्बी अट्टालिकाओं में रहें। अर्जित सम्पत्ति का उपयोग धर्म के नाम पर अभावग्रस्तों के लिए करें।

२. जनसंख्या बढ़ रही है और जमीन कम पड़ रही है। संवेदनशील होने के नाते वे इस समस्या को हल करने हेतु नये मन्दिर-मस्जिद, गिरजा-गुरुद्वारे आदि बनाना बन्द कर दें। किसी भी गाँव या नगर में एक से अधिक धर्मस्थान न रखें। जहाँ ऐसे अधिक स्थान हैं, उन्हें वे सार्वजनिक केन्द्र बना दें।

३. जिन्दा इंसानों के लिए भी जमीन नहीं है तो मुर्दों के लिए जमीन कब्जियाने की परम्परा बदलें।

४. आम रास्तों पर रामलीला करने, ताज़िया या मूर्तियाँ बिठाने से दंगे भड़कते हैं, नागरिक सुविधाओं में बाधा पड़ती है। उन्हें रोकने के लिए आम रास्तों का उपयोग करना छोड़ें। ताज़िया, मूर्तियाँ आदि आम रास्तों से ले जाते समय भी किसी तरह का प्रदर्शन न करें।

५. ध्वनि-प्रदूषण बढ़ रहा है और कोलाहल के कारण लोग बहरे होते जा रहे हैं। अतः धार्मिक स्थानों में लाउडस्पीकर का उपयोग न करें। न माइक पर अज़ान हो और न ही रात-भर कीर्तन।

६. हर धर्म में महापुरुषों ने अपने जीवन का एक-एक पल समाजसेवा में लगाया, और लोगों के अभ्युदय के कार्य किये। एक उक्ति है 'धर्मात् अर्थश्च कामश्च किमर्थम् तत्र सेव्यते।' ऐसी उक्तियों से ज्ञात होता है कि धर्माचार्यों ने जीवन की जरूरतें पूरी कराने में भी साथ दिया। धर्मशाला, गोशाला, विश्रामालय, विद्यालय, औषधालय, कुएँ, तालाब आदि का निर्माण कराने में वे सदा आगे रहे। उन्होंने सेवाकार्यों में भाग लेनेवालों को सम्मानित करते हुए कहा कि वे योगियों से भी श्रेष्ठ हैं। 'सेवाधर्मः परम गहनो, योगिनामप्य गम्यः।' इस तरह लोकसेवा को महत्त्व मिला। इसलिए किसी भी महापुरुष की जयन्ती आदि के नाम पर कभी छुट्टी न लें। उलटा उस दिन और अधिक काम करने का कीर्तिमान बनायें।

७. बड़ों के प्रति आदर, बराबरवालों के साथ मैत्री और छोटों के लिए वात्सल्य रखने से पारस्परिक व्यवहार में शालीनता आती है। धर्माचार्य इसके अनुरूप बर्ताव करें।

इससे समाज में व्याप्त निरादर की भावना घटेगी, जनसाधारण भी अपना महत्त्व समझ सकेगा। यह शिष्ट आचरण ही नहीं, सदाचरण है।

'हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हता चाज्ञानिनो क्रिया।' क्रियाहीन ज्ञानी और ज्ञानरहित क्रिया करनेवाला कभी समाधान नहीं पा सकता। वह एकांगी हो जाता है। इस एकांगिता के कारण आज समाज में यह स्थिति हो गई है कि शिक्षक शिक्षा के लिए जिम्मेदार नहीं है, न्यायाधीश न्याय के लिए जिम्मेदार नहीं है, डॉक्टर रोगियों के लिए जिम्मेदार नहीं है, और कर्मचारी काम के लिए जिम्मेदार नहीं है। सब अपनी-अपनी जिम्मेदारियों के प्रति लापरवाह हैं, क्योंकि ये सारी जिम्मेदारियाँ व्यवसाय बन गई हैं। व्यावसायिकता ने अधिक से अधिक सुख पाने और स्पर्धा में आगे निकलने की होड़ लगा दी। 'मत्स्य न्याय' महत्त्व पा गया है। समाज मत्स्य न्याय से चल नहीं सकता। क्योंकि उसे अशक्त, रोगी, वृद्ध आदि सबकी सुरक्षा की चिन्ता करनी पड़ती है। सभ्य समाज, दुर्बल को भी पूरी तरह सुरक्षित रखता है। सर्वोदय समाज इसीलिए सबसे पीछेवाले को कसौटी मानकर अपनी योजनाएँ चलाता है।

भारत में अब कोई व्यक्ति पिछड़ा नहीं रहना चाहता। लोकतन्त्र ने हर व्यक्ति को वोट देने का अधिकार दिया है और उसे मानवता, समता तथा स्वतन्त्रता के प्रति प्रतिबद्धता माना गया है। यदि इस तन्त्र में हमें विश्वास है तो व्यक्ति-व्यक्ति में भेद करनेवाली समानान्तर धार्मिक सरकारें न चलने दें। व्यक्तिगत और साम्प्रदायिक हितों के लिए राष्ट्रीय सम्पत्ति नष्ट करनेवाली मानसिकता से मुक्ति पायें। धर्म के नाम पर बहुपत्नी प्रथा का चलन बन्द करें। समान शिक्षा, समान कानून और समान रीति-नीति पर ही नागरिक स्वतन्त्र या उत्तरदायित्वपूर्ण प्रजातान्त्रिक व्यवस्था टिक सकती है। हमें ऐसी व्यवस्था टिकाये रखने के लिए जो योजनाएँ हाथ में लेनी चाहिए, वे निम्न हो सकती हैं :

१. प्रेम, शान्ति, सहयोग, समता की बात करें और उसे व्यवहार में प्रभावी बनाये रखने वाली कार्यशालाएँ चलायें।

२. स्वच्छ पानी, शुद्ध हवा, स्वस्थ जीवन के साथ खिलवाड़ करनेवाली किसी भी योजना को अपने क्षेत्र में न चलने दें।

३. अन्न, वस्त्र, आवास, शिक्षा, चिकित्सा, रक्षा सम्बन्धी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति सहकारी प्रयत्नों से करें।

४. हिन्दू, मुस्लिम, जैन, बौद्ध, ईसाई, सिख इत्यादि, विशेषण लगाने वाली संस्थाओं को सरकारी अनुदान न दिया जाए। मानवहितकारी संस्थाएँ ही अनुदान की पात्र मानी जाएँ।

५. समय-समय पर यदि कहीं असन्तोष या उपद्रव हो तो उसकी निष्पक्ष जाँच

करें। उसे न साम्प्रदायिक, न जातीय और न ही राजनीतिक रंग दें।

६. शिक्षण संस्थाओं में समन्वयकारी पाठ्यक्रम रखा जाए।

७. संघर्ष टालने के लिए समय और शक्ति खर्च करने वाले लोगों का अभिनन्दन किया जाए और उनकी कार्यप्रणाली का प्रकाशन कर जनता को तदनुरूप कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाए।

ऐसा नहीं है कि इन योजनाओं पर अब तक कार्य नहीं हुआ, या चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए कोई पहल नहीं की गई। हमारे पूर्वजों ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। किन्तु वे काम करते-करते ही चले गये। उनका कार्य अधूरा रह गया। उसे पूरा करने की जिम्मेदारी हमारी है। विनोबाजी ने इसी बात को दूसरे शब्दों में रखते हुए कहा था कि– "दुनिया में निरन्तर धर्म पर चलने की कोशिश होती रही है, लेकिन अभी तक धर्म बना नहीं है। गीता में कहा गया है कि धर्मस्थापना के लिए भगवान बार-बार अवतार लेते हैं। एक विद्यार्थी परीक्षा में बार-बार बैठता है, क्योंकि वह फेल हो जाता है। उसी तरह धर्म की स्थापना करने के लिए भगवान को बार-बार अवतार लेना पड़ता है, क्योंकि वे हर बार फेल हुए हैं। लेकिन अभी तक धर्मस्थापना नहीं कर पाये हैं। अलग-अलग नाम से धर्म खड़े कर दिए गए हैं, लेकिन धर्मतत्त्वों पर विश्वास नहीं है। मरने के बाद स्वर्ग मिलेगा या नरक मिलेगा। जो होगा सो होगा, लेकिन उससे पहले अहिंसा, सत्य आदि सिद्धान्तों पर चलने की आवश्यकता है। उन्हें छोड़ने से अवश्य हानि होगी, ऐसा अभी तक विश्वास नहीं हुआ है। राजनीति में, बाजार में, व्यापार-उद्योग में, वकालत में कुछ असत्य होना चाहिए, ऐसा माना जाता है। हर हालत में सत्य ही होना चाहिए, ऐसा नहीं माना जाता है। इसी तरह अहिंसा किसी को अमान्य नहीं है। लेकिन लोग मानते हैं कि कभी किसी को दबाना पड़ेगा और कभी किसी को फाँसी भी देनी पड़ेगी। ऐसा माननेवाले हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, जैन, बौद्ध आदि सभी धर्मों में हैं। जब वे धर्मग्रन्थ पढ़ने बैठते हैं तो पूरे विश्वास से नहीं पढ़ते। वे समझते हैं कि धर्मविचार अभी प्रयोगावस्था में है।"[१०] इस प्रयोगावस्था से ऊपर उठकर हम आदर्श और व्यवहार के बीच, समस्याओं और समाधानों के बीच सुसंवादिता निर्माण करें।

सांस्कृतिक परिवर्तनों को देखते हुए अब यह अनिवार्य हो गया है कि जीवन को खंड-खंड करके न देखें, वरन् इसे सम्पूर्णता में लें। जीवन की आवश्यकताएँ बदलती हैं, वैसे ही संस्कृति भी बदलती रहती है। "जीवन स्थिर और जड़ नहीं है। संस्कृति भी जड़ और स्थिर नहीं है। समाज के आर्थिक और सामाजिक जीवन में परिवर्तन होते रहते हैं। सांस्कृतिक जीवन भी साथ-साथ बदलता रहता है। प्राचीन काल में जब धर्म-मज़हब समस्त जीवन को व्याप्त और प्रभावित करता था, तब संस्कृति को बनाने में उसका भी

हाथ था। किन्तु आज मज़हब का प्रभाव कम हो गया है। अन्य विचार, जैसे राष्ट्रीयता आदि, उसका स्थान ले रहे हैं। यदि ऐसा न होता तो एक देश में रहने वाले विविध धर्मों के अनुयायी उसे कैसे अपनाते?"[११] राष्ट्रीयता की माँग है कि भारत में रहनेवाले सभी लोगों के साथ समानता का व्यवहार हो तथा सदा एकरूपता लाने का प्रयास हो।[१२] यह प्रयास 'योगक्षेमम् वहाम्यहम् की भावभूमि पर खड़े होकर किया जाए तो भारतीय संस्कृति के समक्ष उपस्थित चुनौतियाँ समाप्त हो जायेंगी और विश्व-संस्कृति के साथ हमारी एकरूपता भी रह जायगी। हम सामान्य नहीं हैं, यह बात अपने आपमें महसूस करें। अपने मनोबल और संकल्पबल को मजबूत करें, तभी हम भारतीय संस्कृति के अनुरूप नागरिक सिद्ध हो सकेंगे। भारत का नागरिक अपने आप में मनुष्य हैं, साधु है और देवता भी है, जिसे समय की पहचान है :

कहा लखे सो मानवी, सैन लखे सो साध।
मन की लखे सो देवता, समझें अगम अगाध।।



१. नवसंस्कृति संघ का प्रस्तावित घोषणापत्र, 'जनवाणी' मासिक, वाराणसी, मार्च, १९४६
२. 'जनवाणी' मासिक, वाराणसी, मार्च १९४६, पृ. १८४
३. वर्तमान भारत, पृ. १
४. वही, पृ.८-९
५. साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति, में 'भारतीय समाज और संस्कृति' आचार्य नरेन्द्रदेव (सं. रमेशचन्द्र तिवारी व कृष्णनाथ), प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, १९८८, पृ.१३९-४०-४१
६. आचार्यकुल, अप्रैल १९८८
७. राजनीति का विकल्प, पृ. १४
८. दशवैकालिक अ. ५
९. साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति, में 'वसुधैव कुटुम्बकम्', आचर्य नरेन्द्रदेव। प्रभात प्रकाशन, दिल्ली १९८८, पृ.१४२
१०. धार्मिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि, पृ. ३२
११. साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति, में 'संस्कृति', आचर्य नरेन्द्रदेव। प्रभात प्रकाशन, दिल्ली १९८८, पृ.१३४
१२. वही, पृ. १३३

आचार्य नरेन्द्रदेव जन्मशती - संगोष्ठी में प्रस्तुत लेख, जो विश्वविद्यालय प्रकाशन की 'भारतीय समाज एवं संस्कृति परिवर्तन की चुनौती पुस्तक में प्रकाशित' पृ. २५२-२६०



संस्थान का कुतुबनुमा

जय जगत सेवा संस्थान की स्थापना ३० जनवरी १९८९ को हुई। म. गाँधी की १२५वीं जयन्ती, संत विनोबा की जन्मशती, भारतीय स्वतंत्रता तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्वर्ण जयन्ती की पूर्व तैयारी योजना बनायी, तब गांधी शताब्दी समारोह यानी १९६९ से १९८९ की अवधि में हुए दो दर्जन छोटे-बड़े युद्धों में हुई धन-जन-हानि का आकलन कर संरक्षण की ओर से निम्न परिचय पत्रक प्रसारित किया गया :

आधार पत्र

- ८० बच्चों का शिक्षण चाहिए या एक हथियारबन्द सैनिक?
- ५२० कक्षाओं का सामान चाहिए या एक टैंक?
- ४० हजार अस्पताल चाहिए या एक जेट?
- ३० लाख टन गेहूँ चाहिए या एक विमान?
- १ लाख टन चीनी चाहिए या एक बमवर्षक?
- जीव-जगत का जीवन चाहिए या एक एस.एस. प्रक्षेपास्त्र श्रेणी?
- विनाशपरक कार्य योजना चाहिए या विकासपरक जैव प्रौद्योगिकी?

जन साधारण का उत्तर ही जयजगत सेवा संस्थान का मूलाधार है।

सम्पत्ति से अधिक सादगी, सत्ता से अधिक सेवा, शास्त्र से अधिक सदाचार, शस्त्र से अधिक शिक्षा, युद्ध से अधिक शान्ति और संहार से अधिक सृजन के प्रति प्रतिबद्धता पैदा करना जयजगत सेवा संस्थान का कार्यक्रम है। जयजगत सेवा संस्थान कार्यशाला है, जहाँ व्यक्ति और व्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन की संभावनाएँ साकार करना है।

पोस्टर एक

हजारों की संख्या में आधार पत्र स्कूलों में, घरों में, वाचनालयों में और दैनिक पत्रों में बंटें और राष्ट्रीय बहस छिड़ी, तभी आस्ट्रेलिया के पोस्टर के आधार पर 'भूमिपुत्र' ने वड़ोदरा से विज्ञापन निकाला :

- धरती के लिए युद्ध या मानवता के लिए विश्वशांति?
- ग्रह : पृथ्वी
- भेजने वाली : विश्व की शस्त्रस्पर्धा
- लेने वाली : मानव जाति

भारत के संदर्भ में श्री जसवंत सिंह का विश्लेषणात्मक पोस्टर सर्वोदय समाचार सेवा, इन्दौर ने प्रसारित किया :–

● दो सौ मेगावाट के चार थर्मल बिजली घर	प्रतिवर्ष	प्रतिरक्षा व्यय में
● पाँच सौ कमरों वाला चौदह अस्पताल	प्रतिवर्ष	मात्र ४% कटौती
● आवागमन के लिए २५०० बसें	प्रतिवर्ष	
● सारे गांवों और कस्बों के लिए पीने का पानी		
● करोडों बेकारों के लिए रोजगार		

आचार्यकुल ने पूछा : क्या आप जानते हैं?

१९०० से १९५३ की अवधि में युद्ध और युद्ध की तैयारी में जितना खर्च हुआ, उससे सारी दुनिया के लोगों का आधी शताब्दी तक पेट भरा जा सकता था।

- एक जेट बमवर्षक की कीमत से एक लाख टन चीनी खरीदी जा सकती है।
- एक टैंक के दाम से हम ५२० कक्षाओं की पढ़ाई का आवश्यक सामान मुहैय्या करा सकते हैं।
- वैज्ञानिक बिरादरी की ४०% सर्वश्रेष्ठ मेधा केवल युद्ध उपकरणों के उत्पादन में लगी है।
- प्रतिमिनट दस लाख डालर से ज्यादा दुनिया का सैन्य खर्च है, जबकि पिछले दस वर्षों में विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा जो खर्च किया गया, वह एक बमवर्षक की कीमत जितना भी नहीं है।

साउथ एशिया १९९७ की रिपोर्ट में भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश, भूटान, नेपाल, मालदीव, अफगानिस्तान की सरकारों को अपने रक्षा बजट में प्रतिवर्ष ५ प्रतिशत कटौती करने का सुझाव विशेषज्ञों ने दिया।

१ जून २००७ को 'दि हिन्दू' पत्रिका में क्यूबा के राष्ट्रपति फिदेल कास्त्रो का अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश को संबोधित वक्तव्य प्रसिद्ध हुआ, जिसमें उन्होंने कहा :

"कुछ दिनों पूर्व एस्ट्यूट शृंखला में निर्मित हो रही तीन पनडुब्बियों पर हो रहे खर्च का विश्लेषण करते हुए मैंने कहा था, 'अगर हम अमेरिका में चिकित्सा–शिक्षा पर किये जा रहे खर्च का एक तिहाई हिस्सा प्रशिक्षण पर खर्च करें तो इस धन के माध्यम से ७५००० चिकित्सकों को प्रशिक्षण दिया जा सकता है, जो कि १५ करोड़ व्यक्तियों का उपचार करने में समर्थ होंगे।

मैं विस्मयपूर्वक यह सोचने को बाध्य हूँ कि अमेरिका ने इराक पर मात्र एक वर्ष तक अपना कब्जा बनाये रखने हेतु बुश के हाथ में जो १०० अरब डालर दिये हैं, उससे

९ लाख ९९ हजार ९९० चिकित्सक शिक्षा ग्रहण कर सकते थे, जो कि उन दो अरब व्यक्तियों की देखरेख कर सकते थे, जिन्हें आज तक किसी भी प्रकार की आधुनिक चिकित्सा सहायता उपलब्ध नहीं है।

इराक पर अमेरिकी हमले के बाद से ६ लाख से अधिक व्यक्तियों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा है और २० लाख से ज्यादा पलायन को मजबूर हो गये हैं।

जिन देशों में विकास कम हुआ है और बीमारियाँ ज्यादा हैं, वहाँ सबसे कम चिकित्सक उपलब्ध हैं। अर्थात् ५,१०,१५,२० हजार या उससे भी अधिक व्यक्तियों पर एक चिकित्सक। हाल में प्रकाश में आये यौनजनित एच.आई.वी./एड्स जैसे रोग ने पिछले बीस वर्षों में लाखों व्यक्तियों को मार डाला है, जिनमें माताएँ और बच्चे भी शामिल हैं। हालांकि इससे पार पाने के छोटे-मोटे प्रयास चल रहे हैं, परंतु इस प्रक्रिया में एक मरीज पर साल भर में दवा का खर्च पाँच हजार से १५ हजार डॉलर तक पहुँच जाता है।

अधिकांश विकासशील देशों के लिए यह चौंका देने वाला आंकड़ा है। जिन देशों में कुछेक सार्वजनिक अस्पताल हैं, वहाँ इस तरह की बीमारियों से मरने वालों की संख्या ज्यादा है। इसकी जमीनी सचाई पर हम गौर करें तो इस त्रासदी को बेहतर तरीक से समझ सकेंगे।"

कुतुबनुमा (Composs needle) दिशा सूचकयंत्र बने हमारे पत्रक और पोस्टरों ने मारक एवं तारक संकेत दिये, वैसे ही अन्य देशों में हुआ। किश्ती का रुख बदलने की संभावनाएँ स्पष्ट हुई, २ अक्टूबर २००७ को जब संयुक्त राष्ट्रसंघ के करीब १९० सदस्य देशों ने गांधी जयंती अहिंसा दिवस के रूप में आयोजित की। आयोजकों को अनुभव हुआ कि भले ही हम अलग-अलग देशों के हैं, अलग-अलग भाषाएँ बोलते हैं, लेकिन समस्याएँ हम सबकी समान हैं। विकास की विसंगतियों से उत्पन्न अभाव, अन्याय, अज्ञान, आतंक से मुक्ति चाहिए तो अपनी-अपनी जीवन शैली में बदलाव लाकर जागतिक अन्तर्विरोध घटायें। जयजगत सेवा संस्थान द्वारा उसके अनुरूप दृष्टि एवं सृष्टि करने का उपक्रम किया गया, ताकि भारत एशिया की या दुनिया के किसी भी हिस्से की कुचली, चूसी हुई जातियों की आशा बनी रहे। आशा की किरण खोजने में संस्थान की संलग्नता ही लगभग दो दशकों की उपलब्धि है, जिसमें सर्वोदय समाज, आचार्यकुल, अहिंसा, समवाय, भारत विकास संगम, सुरभि शोध संस्थान सहित अनेक गांधीनिष्ठ विचारकों की सहभागिता है। सभी एक स्वर से बोल रहे हैं :

समानि वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

विदेशी मित्रों का भी समवेत स्वर सुनायी पड़ रहा है :

We should Think :

Common be our Prayer
Common be our end
Common be our deliberation
Common be our desires.
United be our hearts
United be our intentions
Perfect be the Union among us.




भारती पुस्तकालय
2100

लेखक

मेवाड़ में जन्म (१९३१) एवं शिक्षा-दीक्षा।

पशुबलि, सप्त व्यसन तथा अन्ध विश्वासों के खिलाफ राजस्थान में प्रबोधन यात्रा।

भारत में भूदान मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति की विभिन्न प्रवृत्तियों में योगदान।

वर्ल्ड कान्फ्रेन्स ऑफ रिलिजन फॉर पीस, विश्व धर्म संगम के कार्यक्रमों से विदेश-प्रवास।

उ.प्र. सरकार द्वारा गठित भगवान् महावीर निर्वाण समिति, महात्मा गाँधी की १२५वीं जयन्ती, भारत सरकार द्वारा गठित विनोबा जन्म शताब्दी समिति के सदस्य एवं जय जगत् मैत्री अभियान के संयोजक।

सर्वोदय समाज, आचार्यकुल, सुरभि शोध संस्थान आदि रचनात्मक संस्थाओं से सम्बद्ध एवं इतिहास को दर्शन और दर्शन को इतिहास में ढालने वाले रचनाधर्मी लेखक, सम्पादक, संगठक।

जीवन मंत्र

'अन्तःशुद्धिः बहिः शुद्धिः
श्रमः शान्तिः समर्पणम् ।'

Jai Jagat Seva Sansthan

(World Welfare Organisation)



- We sow a thought and we reap an act.
- We sow an act and we reap a habit.
- We sow a habit and we reap a character.
- We sow a character and we reap a destiny.
- We live in a world that we ourselves have made.
- We are the maker of our destiny.



Jai Jagat Seva Sansthan

B. 3/13-30, Navodit Nagar Extension,
Varanasi - 221010 (INDIA)

Rs. 150/-